इंडियन बैंक Indian Bank
इलाहाबाद ALLAHABAD

आज़ादी का अमृत महोत्सव

इंड छवि

अंक : 22, सितंबर 2022

हिंदी साहित्यकार विशेषांक

दिनांक 10.05.2022 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक/वि.सं.), चेन्नै एवं नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उपक्रम) की समीक्षा बैठक का आयोजन

प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए माननीय गृह राज्य मंत्री श्री अजय कुमार मिश्रा

कार्यक्रम के दौरान बैंक नराकास की पीपीटी के प्रस्तुतीकरण का अवलोकन करते हुए माननीय गृह राज्य मंत्री श्री अजय कुमार मिश्रा एवं श्री शांति लाल जैन, प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी इंडियन बैंक व अध्यक्ष, नराकास (बैंक/वि.सं.), चेन्नै एवं डॉ. मीनाक्षी जौली, संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग, भारत सरकार तथा श्री दलजीत सिंह, कार्यकारी निदेशक (दक्षिण), भारतीय खाद्य निगम व अध्यक्ष, नराकास (उपक्रम), चेन्नै

संपादक मंडल

मुख्य संरक्षक

श्री एस.एल. जैन
प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी

संरक्षक

श्री इमरान अमीन सिद्दीकी : कार्यपालक निदेशक
श्री अश्वनी कुमार : कार्यपालक निदेशक

उप संरक्षक

श्री धनराज टी. : महाप्रबंधक (सीडीओ/राभा)

प्रधान संपादक

श्री अजयकुमार : सहायक महाप्रबंधक (राभा)

संपादक

भूपेश बारोट : प्रबंधक (राभा)

संपादन सहयोग

श्रीमती एम. सुमति : मुख्य प्रबंधक
श्री केदार पंडित : वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
सुश्री आलोचना शर्मा : वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
श्री इरफान आलम : वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
श्री चंदन प्रकाश मेंढे : वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
श्री राजेश गोंड : वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
सुश्री श्वेता गंगिरेड्डी : प्रबंधक (राभा)
श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : प्रबंधक (राभा)

मुद्रक : आर एन ग्राफिक - 8010872289

पत्रिका में प्रकाशित लेखों एवं रचनाओं में व्यक्त विचार, लेखकों के अपने हैं। इंडियन बैंक का उनसे सहमत होना जरूरी नहीं है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों/रचनाओं के लेखकों/रचनाकारों से मौलिकता प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया गया है।

इंडियन बैंक Indian Bank
इलाहाबाद ALLAHABAD

इंडियन बैंक
इंड छवि

अंक - 22, सितंबर 2022

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
1. संदेश प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी का संदेश संपादकीय सहायक महाप्रबंधक (राभा)	
2. महान कवि जयशंकर प्रसाद	4
3. महादेवी वर्मा की साहित्य साधना	7
4. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	12
5. प्रकृति के सुकुमार कवि- सुमित्रानंदन पंत	16
6. क्या होना चाहता हूँ	17
7. सूरदास जी के भ्रमरगीत का सार	18
8. मानव संसाधन की उपयोगिता एवं विकास	21
9. फणीश्वर नाथ 'रेणु'	24
10. मन्नू भंडारी की जीवन यात्रा	26
11. पैसा	27
12. बाबा नागार्जुन	28
13. विशेष शख्सियत: काजी नजरुल इस्लाम	31
14. कमलेश्वर	33
15. शमशेर बहादुर सिंह	35
16. पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी- एक परिचय	37
17. "बिज्जी" विजयदान देथा	39

सम्पर्क सूत्र :-
इंडियन बैंक, कॉर्पोरेट कार्यालय,
राजभाषा विभाग, 254-260, अव्वै षण्मुगम सालै,
रॉयपेट्टा, चेन्नै - 600 014
वेबसाइट : www.indianbank.co.in
ई-मेल : hoolc@indianbank.co.in

प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी का संदेश ....

मेरे प्रिय साथियो,

कॉर्पोरेट कार्यालय की हिंदी गृह पत्रिका इंड-छवि के "हिंदी साहित्यकार विशेषांक" के माध्यम से आप सभी के समक्ष अपने विचार रखते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।

साथियों, साहित्य समाज का दर्पण होता है, एक साहित्यकार समाज के मनोभावों से परिचित होता है क्योंकि वह लोगों के मनोविज्ञान के अनुसार अपनी रचना में भाव एवं भाषा के संयोजन द्वारा एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति का निर्माण करता है।

हिंदी साहित्यकारों ने हमेशा अपनी रचनाओं व साहित्य के माध्यम से लोगों को जागरूक बनाया है तथा उनमें राष्ट्रीयता व नवजागरण का बोध भी विकसित किया है। भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त सहित अन्य कई साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा न केवल समाज के समस्त पक्षों व चरित्रों को उभारा है, बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति पाठकों को जागरूक भी किया है। साहित्य हर कालखंड में जनता को जागरूक एवं ज्ञान विज्ञान से समृद्ध बनाता है। आज के इस तकनीकी एवं सोशल मीडिया के युग में भी भाषा व साहित्य अपनी अलग पहचान रखता है।

व्यावसायिक क्षेत्र में सफल होने एवं अपने उत्पादों व सेवाओं को आम जनता के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए भाषा एक महत्वपूर्ण उपकरण है। हम सभी यह बखूबी जानते हैं कि अच्छे 'स्लोगन' एवं 'टैगलाइन' किसी भी संस्था व उत्पाद को प्रसिद्धी दिलाने में अहम भूमिका निभाते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के नवोत्थान एवं देश की आर्थिक उन्नति में बैंकिंग क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन दिनों बैंकिंग क्षेत्र में भी आमूलचूल परिवर्तन हुए हैं जिसके कारण बैंकिंग क्षेत्र में बढ़ती प्रतिस्पर्धा व समय की मांग के अनुरूप अपने उत्पाद व सेवाओं को डिजाइन करना एवं बेहतर बनाना हमारा दायित्व हो गया है। इसके लिए हमें बेहतर तकनीकी एवं श्रेष्ठ परिचालनों को अपनाना होगा जो हमारे ग्राहकों की मांग के अनुकूल हो। आज के समय में तकनीकी सामर्थ्य को भी बढ़ाना अत्यावश्यक है, अन्यथा हम इस क्षेत्र में टिक नहीं पाएंगे। शाखा स्तर पर प्रणाली एवं प्रक्रियाओं में नवीनता एवं सुगमता लानी होगी, जिनका लक्ष्य लाभोन्मुख सेवाएं प्रदान करना हो। हमने डिजिटलाइजेशन के महत्व को समझते हुए इस क्षेत्र में कई नई सुविधाओं को अपनाया है जिनमें प्री अप्रूव्ड लोन सुविधा, 'केसीसी का ऑनलाइन नवीनीकरण' इत्यादि प्रमुख हैं। मानव संसाधन उत्कृष्टता को बढ़ावा देने की दिशा में, हमने बैंक में 'इंड-प्राइड' की शुरूआत की है जिसका उद्देश्य योग्यता-आधारित तरीके से प्रदर्शन का मूल्यांकन करना, समझना और प्रोत्साहन द्वारा उत्कृष्टता लाना है एवं पारदर्शी प्रदर्शन उन्मुख संस्कृति का निर्माण करके बैंक के कर्मचारियों को सशक्त बनाना है।

एक सशक्त बैंकिंग व्यवस्था किसी भी देश के विकास व समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन देशों ने आर्थिक तरक्की की है, उन देशों की बैंकिंग प्रणाली सुदृढ़ रही है। भारतीय बैंकिंग हमेशा नए परिवर्तनों को आत्मसात करते हुए एवं उनके साथ समायोजन करते हुए आगे बढ़ी है।

हिंदी भाषा ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, बाजार एवं विज्ञापन की भाषा के रूप में पूरे देश में छाई हुई है। हमारा बैंक अपने उत्पादों, सेवाओं, प्रौद्योगिकी एवं आंतरिक कामकाज में हिंदी भाषा के प्रयोग के प्रति पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध है।

हमारा प्रयास एवं संकल्प होना चाहिए कि हम राजभाषा नीति का पूर्ण अनुपालन करते हुए आम जनता के लिए सुग्राह्य भाषा में बैंकिंग सुनिश्चित करें।

आजादी के अमृत महोत्सव के इस शुभ अवसर पर, महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की कविता की इन प्रेरक पंक्तियों का उल्लेख करना चाहूंगा-

"वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे!
वर दे, वीणावादिनी वर दे!"

हिंदी दिवस की शुभकामनाओं के साथ

एस.एल. जैन
प्रबंध निदेशक एवं मुख्य कार्यपालक अधिकारी

संपादकीय

प्रिय साथियो,

बैंक की हिन्दी गृह पत्रिका "इंड-छवि" के नवीनतम अंक 'हिन्दी साहित्यकार विशेषांक' के माध्यम से आप सभी के बीच अपने विचार रखने का सुयोग प्राप्त हुआ है।

हम सभी जानते हैं कि समाज में होने वाली विविध घटनाओं एवं चरित्रों के माध्यम से साहित्य समाज का चित्रण करता है। साहित्य द्वारा ही नवोन्मेषी विचारों एवं ज्ञान-विज्ञान के आलोक से मानव जाति के लिए आगे का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।

मानव के रूप में, हमारी बहुआयामी प्रगति में साहित्य की महती भूमिका रही है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, हमने "साहित्यकार विशेषांक" का यह अंक तैयार करने की कोशिश की है, ताकि हम भाषा की श्रीवृद्धि करते हुए उन महान साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से रूबरू हो सकें।

"संभलो कि सुयोग न जाए चला
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला
समझो जग को न निरा सपना
पथ आप प्रशस्त करो अपना
अखिलेश्वर है अवलंबन को
नर हो, न निराश करो मन को।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी की उपर्युक्त पंक्तियां निरंतर हमें प्रेरित करते हुए, निज लक्ष्य प्राप्त करने का आह्वान करती हैं। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। मानव के रूप में हम सभी के पास समान शक्तियां ईश्वर द्वारा प्रदत्त होती हैं। इनका सदुपयोग एवं विवेकशील व्यवहार मानव की उन्नति का मूल मंत्र है।

हमारा बैंकिंग क्षेत्र प्रतिदिन नई चुनौतियों का सामना करता है। ऐसे में हमें नित नवीन प्रेरणा एवं उत्साह की आवश्यकता होती है। यदि हम गुणवत्तापूर्ण प्रबंधन एवं अदम्य उत्साह से अपने लक्ष्यों का संधान करें तो उन समस्त लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं जो हमारी व्यावसायिक उन्नति का आधार है।

हमारा बैंक राजभाषा कार्यान्वयन के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता रखते हुए, इस क्षेत्र में कुछ नवोन्मेषी प्रयासों का आग्रही है। हिन्दी का प्रयोग संवैधानिक दायित्व के साथ हमारी नैतिक जिम्मेदारी का भी हिस्सा है।

आशा करता हूँ कि हमारा यह अंक आपको पसंद आएगा। आपसे अनुरोध है कि अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें लाभान्वित करें ।

शुभकामनाओं के साथ।

अजयकुमार
सहायक महाप्रबंधक (राभा)

महान कवि जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद, जिन्हें एक महान कवि के रूप में कौन नहीं जानता। उन्होंने न सिर्फ हिन्दी साहित्य में अपना अति महत्वपूर्ण योगदान दिया, बल्कि अपनी रचनाओं और नाटकों के माध्यम से युग परिवर्तन कर दिया।

महादेवी वर्मा कहती हैं : जब मैं अपने महान कवियों की बात करती हूं, तो जयशंकर प्रसाद का चित्र निश्चित ही मेरे दिमाग में सबसे पहले आता है। ऐसा लगता है जैसे- 'हिमालय के बीच में एक पेड़ गर्व से खड़ा हो। गगनचुम्बी होने की वजह से बर्फबारी, बारिश और तपती धूप भी उन पर हमला करती है। जहां पानी भी बहुत कम है ऐसा लगता है जैसे पानी उस पेड़ की जड़ों के बीच लुका-छुपी खेल रहा हो। लेकिन भारी बर्फबारी, वर्षा और तेज धूप में भी वह पेड़ ऊंचाइयों पर गर्व से खड़ा है।'

महाकवि जयशंकर प्रसाद जी का जन्म- 30 जनवरी, 1889 ई० को काशी के सुंघनी साहू परिवार में हुआ था।

मृत्यु -15 नवम्बर, 1937 (आयु- 48 वर्ष) वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुई थी। प्रसाद जी के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी- विंध्यवासिनी, दूसरी पत्नी- कमला देवी तथा पुत्र का नाम रत्नशंकर था।

प्रसाद जी संपादक, उपन्यासकार, नाटककार, कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इनकी साहित्य यात्रा का प्रारंभ 'इंदु' पत्रिका के संपादन के साथ हुआ जो 'कामायनी' तक अनवरत चलता रहा। शुरू में प्रसाद जी 'कलाधर' नाम से ब्रजभाषा में रचना किया करते थे। इनका 'प्रेमपथिक' काव्य (1905) ब्रजभाषा में लिखा गया जो आगे चलकर खड़ी बोली में परिवर्तित हो गया।

इनकी प्रमुख रचनाएं - चित्राधार, कामायनी, आँसू, लहर, झरना, एक घूंट, विशाख, अजातशत्रु, आकाशदीप, आँधी, ध्रुवस्वामिनी, तितली और कंकाल हैं।

जयशंकर प्रसाद एक अच्छे कवि के रूप में ही नहीं बल्कि एक अच्छे नाटककार, कथाकार, उपन्यासकार और निबंधकार के रूप में भी मशहूर थे। इसके साथ ही उन्हें छायावादी युग के महान लेखक के तौर पर भी जाना जाता था। उन्हें हिन्दी के छायावादी युग के 4 मुख्य स्तंभों में से एक माना जाता है, जिन्होंने हिन्दी काव्य में छायावाद की स्थापना की थी।

यही नहीं, उन्होंने एक साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की और भारतीय हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के छायावादी युग के चार मुख्य कवियों में से भी एक थे, जिनमें महान दिग्गज लेखक सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा शामिल हैं। आपको बता दें कि द्विवेदी युग के बाद छायावाद युग की शुरुआत की गई थी, इस युग को साल 1918 से 1936 तक माना जाता है।

नाटक लेखन में कड़ी भाषा के जनक भारतेंदु के बाद, वे एक नई धारा का प्रवाह करने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे हैं, जिनके नाटकों को पाठकों द्वारा आज भी खूब पसंद किया जाता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में नाटक सबसे ज्यादा लिखे हैं। इन्हें 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ है।

इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी छायावाद युग के महान लेखक जयशंकर प्रसाद जी ने कई यादगार कृतियां दी हैं। इसके साथ ही कथा साहित्य के क्षेत्र में उनके द्वारा दिए गए योगदान महत्वपूर्ण हैं। भावना-प्रधान कहानी लिखने वाले लेखकों की सूची में जयशंकर प्रसाद का नाम सबसे ऊपर है। महज 48 साल के अल्प जीवन में उन्होंने हिन्दी की सभी विधाओं पर रचनाएं लिखीं। लेखन के अलावा उनकी रुचि खेल-कूद में भी थी।

जयशंकर प्रसाद शतरंज के एक अच्छे खिलाड़ी भी थे। अपने बाकी के समय में उन्हें बाग-बगीचे की देखभाल करना और खाना बनाना भी काफी पसंद था। वे गंभीर स्वभाव के व्यक्तित्व थे, जिनके बारे में हम आपको अपने इस लेख में बताने जा रहे हैं-

जयशंकर प्रसाद जी को प्रारंभिक शिक्षा उनके घर पर ही दी गई उनके लिए घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, फारसी और उर्दू के शिक्षक भी नियुक्त किए गए थे। हालांकि कुछ समय के बाद उन्होंने स्थानीय क्विन्स कॉलेज में भी एडमिशन लिया लेकिन यहां पर वे आठवीं कक्षा तक ही पढ़ सके।

जयशंकर प्रसाद एक अध्यवसायी व्यक्ति थे और नियमित रूप से अध्ययन करते थे। बचपन से ही जयशंकर प्रसाद जी का रुझान साहित्य की तरफ था, वे साहित्यिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। बाद में इन्होंने भारतीय हिन्दी साहित्य में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया और कई ऐसी कृतियां लिखीं जिनसे उनका नाम हिन्दी साहित्य के मुख्य कवियों में गिना जाने लगा। आपको बता दें कि जयशंकर प्रसाद ने वेद, इतिहास पुराण और साहित्य का भी गहन अध्ययन किया था।

इनकी ज्यादातर रचनाएं इतिहास और कल्पना के समन्वय पर आधारित हैं और इनकी रचनाओं में शिल्प के स्तर पर भी मौलिकता के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही आपको बता दें कि जयशंकर जी की रचनाओं की भाषा बेहद सहज और सुगम है जो कि पाठकों को आसानी से समझ में आ जाती है, इसलिए इन्हें भाषाओं का पंडित भी कहा जाता है।

छायावाद युग प्रवर्तक और एक अच्छे कवि होने के अलावा यह एक प्रसिद्ध नाटककार, उपन्यासकार और कथाकार भी थे जिन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध आदि साहित्यिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इसके अलावा इन्होंने अपनी लेखन शैली के माध्यम से अपनी पूरी रचनाओं का बेहद सुंदर तरीके से शृंगार भी किया है। वहीं इनकी रचनाएं मानवीय रूप से जुड़ी हुई हैं जिनमें प्रेम और सौन्दर्य का उल्लेख बहुत बड़े स्तर पर मिलता है। इनकी रचनाओं के बारे में नीचे दिया गया है।

जयशंकर प्रसाद जी के काव्य संग्रहों में कामायनी, आँसू, झरना, कानन-कुसुम, लहर है।

काव्य-संग्रह

कामायनी :- जयशंकर प्रसाद जी का यह सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य है, जो कि साल 1936 में प्रकाशित किया गया। इसमें इन्होंने मनुष्य को श्रद्धा एवं मनु के माध्यम से हृदय एवं ज्ञान के समन्वय का सन्देश दिया है। इनकी इस रचना पर इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक सम्मान मिला।

आँसू :- यह जयशंकर प्रसाद जी का 1925 में प्रकाशित एक सर्वश्रेष्ठ गीतकाव्य है, जो कि इनके दुखों से भरी कहानी पर उधृत रचना है, जैसा की इसके नाम से स्पष्ट है कि इसमें वियोग रस का समावेश है।

लहर :- यह 1933 में प्रकाशित, जयशंकर प्रसाद जी की मुक्तक रचनाओं का संग्रह है, जिसमें मन के भावों को प्रकट करती हुई तथा लक्ष्य पर बने रहने की प्रेरणा हमें प्राप्त होती है।

प्रेम पथिक :- यह हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले कवि का ब्रजभाषा स्वरूप है जिसका प्रकाशन साल 1909 में सबसे पहले 'इंदु' ने किया था।

चित्राधार :- जयशंकर प्रसाद की इस रचना को साल 1918 में प्रकाशित किया गया। आपको बता दें कि इसमें अयोध्या का उद्धार, वनमिलन और प्रेमराज्य तीन कथाकाव्य संगृहीत हैं।

झरना :- महाकवि जयशंकर प्रसाद की 1918 में प्रकाशित इस रचना में छायावादी शैली में रचित कविताएँ संगृहीत की गई हैं।

कानन कुसुम :- 1918 में प्रकाशित कानन कुसुम खड़ीबोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है।

महाराणा का महत्त्व :- 1914 ई. में 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था। यह भी 'चित्राधार' में संकलित था, लेकिन 1928 ई. में इसका स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें महाराणा प्रताप की कथा है।

जयशंकर प्रसाद जी की रचनाएँ

चित्राधार

आह! वेदना मिली विदाई

बीती विभावरी जाग री
दो बूँदें
प्रयाणगीत
तुम कनक किरन
भारत महिमा
अरुण यह मधुमय देश हमारा
आत्मकथ्य
सब जीवन बीता जाता है
हिमाद्रि तुंग शृंग से

जयशंकर प्रसाद का कहानी संग्रह

छाया, आकाशदीप, आंधी, इंद्रजाल, प्रतिध्वनि।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यास

कंकाल, तितली, इरावती।

जयशंकर प्रसाद के नाटक

सज्जन, प्रायश्चित, राज्यश्री, कल्याणी परिणय, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, विशाख, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, एक घूंट, करुणालय, अज्ञातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना।

जयशंकर प्रसाद की भाषा शैली

हिन्दी साहित्य के महान कवि और छायावादी युग प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी रचनाएं, काव्य संग्रह, नाटक और निबंध लेखन में निम्नलिखित शैलियों का इस्तेमाल किया है:

1. **भावात्मक शैली** – हिन्दी के प्रख्यात कवि जयशंकर प्रसाद जी की रचना प्रक्रिया नाटक से काव्य लेखन की तरफ उन्मुख हुई है। इसलिए नाटक संयोजन, पात्र योजना, मनोभावों की अभिव्यक्ति भावात्मक शैली में हुई है।
2. **चित्रात्मक शैली** – प्रसाद जी ने जहां वस्तुओं, स्थानों और व्यक्तियों के शब्द चित्र में दर्शाए हैं वहां उनकी शैली चित्रात्मक हो गई है।
3. **अलंकारिक शैली** – हृदय की प्रधानता के कारण महाकवि जयशंकर प्रसाद जी के गद्य में भी अलंकारों का सही इस्तेमाल मिलता है जिसमें अलंकारिक रूप मिलते हैं।
4. **संवाद शैली** – प्रसाद के उपन्यास कहानी और नाटकों में पात्रों के अनुकूल संवाद शैली का इस्तेमाल किया गया है।
5. **वर्णनात्मक शैली** – विषय वस्तु का प्रतिपादन घटनाओं और वस्तुओं के चित्र में वर्णनात्मक शैली का इस्तेमाल मिलता है।

जयशंकर प्रसाद की मृत्यु :- हिंदी साहित्य के महान लेखक जयशंकर प्रसाद अपनी जिंदगी के आखिरी दिनों में टीबी की बीमारी से पीड़ित हो गए थे। जिससे वह लगातार कमजोर होते चले गए। हालांकि इस दौरान भी उन्होंने लिखना नहीं छोड़ा, इन दिनों उन्होंने अपने जीवन की सबसे प्रख्यात रचना "कामायनी" को लिखा जिसे हिंदी साहित्य की अमर कृति भी माना जाता है।

आपको बता दें कि उनकी रचना कामायनी में उनकी जिंदगी से जुड़े हर भाव दु:ख, सुख, वैराग सभी शामिल थे जो कि मानवता की हर अनुभूति का एहसास करवाते हैं।

15 नवम्बर 1937 को जयशंकर प्रसाद ने अपनी जिंदगी की आखरी सांसे लीं और इस तरह हिन्दी साहित्य का एक सितारा हमेशा-हमेशा के लिए सो गया। आपको यह भी बता दें कि वे अपने जीवन के आखिरी क्षणों में अपनी एक रचना इरावती पर काम कर रहे थे जो कि अधूरी ही रह गई।

इस तरह छायावादी युग के महान लेखक जयशंकर प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके द्वारा लिखे गए तितली, कंकाल और इरावती जैसे उपन्यास और आकाशदीप, मधुआ और पुरस्कार जैसी कहानियाँ उनके गद्य लेखन की अपूर्व ऊँचाइयाँ हैं।

महज 48 साल के अल्प जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि लिखकर उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की और हिन्दी साहित्य का संसार सजाया। इसके अलावा अपने नाटकों के माध्यम से वे भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण चरित्रों को भी सामने लाते रहे हैं।

इस तरह कथा साहित्य के क्षेत्र में उनकी देन अति महत्वपूर्ण है, जिन्हें युगो-युगांतर याद रखा जाएगा। उनकी रचनाओं को पाठक आज भी उतनी उत्सुकता से पढ़ते हैं, इस तरह अपनी खूबसूरत कृतियों के द्वारा वे पाठकों के दिलों में आज भी जीवंत हैं।

डॉ. अंजनी कुमार पाण्डेय
वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
अं.का., सीतापुर

महादेवी वर्मा की साहित्य साधना

हिंदी साहित्य जगत में कई महिला एवं पुरुष साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के बल पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है एवं अपनी लेखन शैली से अपने अलग प्रतिमान गढ़े हैं, जो आनेवाले युग के रचनाकारों के लिए एक मिसाल और मील का पत्थर साबित हो रहे हैं और होंगे। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में ऐसी ही एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें हम **"आधुनिक काल की मीरा"** अर्थात **श्रीमती महादेवी वर्मा** के नाम से जानते हैं। आधुनिक काल की सशक्त कवयित्रियों में उनका नाम अग्रणी है।

महादेवी वर्मा जी का जन्म का जन्म 26 मार्च 1907 को फर्रूखाबाद, संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध, ब्रिटिश भारत में हुआ। अपने 80 वर्षों के जीवन काल में उन्होंने कई कालजयी कृतियों की रचना की एवं उन्हें उनकी साहित्य साधना हेतु 1956 में **"पद्म भूषण"**, 1982 में कृति **"यामा"** हेतु **"ज्ञान पीठ पुरस्कार"** एवं 1988 में मरणोपरांत **"पद्म विभूषण"** से नवाजा गया।

भारत के हिंदी साहित्य जगत के छायावादी काल के प्रमुख चार स्तंभों में से एक महादेवी वर्मा हैं। वे मूल रूप से रहस्यवाद और छायावाद की प्रतिनिधि कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। अत: उनके काव्य में आत्मा-परमात्मा के मिलन विरह तथा प्रकृति के व्यापारों की छाया स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। वेदना और पीड़ा महादेवी जी की कविता के प्राण रहे हैं। उनका समस्त काव्य वेदनामय है। उन्हें निराशावाद अथवा पीड़ावाद की कवयित्री कहा गया है। वे स्वयं लिखती हैं, दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जिसमें सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता है। इनकी कविताओं में सीमा के बंधन में पड़ी असीम चेतना का क्रंदन है। यह वेदना लौकिक वेदना से भिन्न आध्यात्मिक जगत की है जो उसी के लिए सहज संवेद्य हो सकती है जिसने उस अनुभूति क्षेत्र में प्रवेश किया हो। वैसे महादेवी इस वेदना को उस दु:ख की भी संज्ञा देती हैं, **"जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है"** (किंतु विश्व को एक सूत्र में बाँधने वाला दु:ख सामान्यतया लौकिक दु:ख ही होता है, जो भारतीय साहित्य की परंपरा में करुण रस का स्थायी भाव होता है। महादेवी ने इस दु:ख को नहीं अपनाया है। वे कहती हैं, **"मुझे दु:ख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधनों में बाँध देता है और दूसरा वह, जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतना का क्रंदन है।"** किंतु, उनके काव्य में पहले प्रकार का नहीं, दूसरे प्रकार का **'क्रंदन'** ही अभिव्यक्त हुआ है। यह वेदना सामान्य लोक हृदय की वस्तु नहीं है। संभवत: इसीलिए **रामचंद्र शुक्ल** ने उसकी सच्चाई में ही संदेह व्यक्त करते हुए लिखा है। **"इस वेदना को लेकर उन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखीं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना, यह नहीं कहा जा सकता"**। इसी आध्यात्मिक वेदना की दिशा में प्रारंभ से अंत तक महादेवी के काव्य की सूक्ष्म और विवृत्त भावानुभूतियों का विकास और प्रसार दिखाई पड़ता है। **डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी** तो उनके काव्य की पीड़ा को मीरा की काव्य-पीड़ा से भी बढ़कर मानते हैं।

हिंदी साहित्य में महादेवी जी का योगदान अविस्मरणीय है एवं इस संक्षेप में गागर में सागर भरने जैसा है। फिर भी महादेवी जी की साहित्य साधना को हम निम्नानुसार

समझ सकते हैं :-

काव्य की विषयवस्तु :- महादेवी समस्त मानव जीवन को निराशा और व्यथा से परिपूर्ण रूप में देखती थीं। वे अपने को नीर भरी बदली के समान बतलाती –

"मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही– उमड़ी थी कल मिट आज चली।"

महादेवी जी के प्रेम वर्णन में ईश्वरीय विरह की प्रधानता है। उन्होंने आत्मा की चिरंतन विकलता और ब्रह्म से मिलने की आतुरता के बड़े सुंदर चित्र संजोए हैं–

"मैं कण-कण में डाल रही अलि आँसू के मिल प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

'अग्निरेखा' में दीपक को प्रतीक मानकर अनेक रचनाएँ लिखी गयी हैं। साथ ही अनेक विषयों पर भी कविताएँ हैं। महादेवी वर्मा का विचार है कि अंधकार से सूर्य नहीं दीपक जूझता है–

"रात के इस सघन अंधेरे में जूझता सूर्य नहीं, जूझता रहा दीपक!
कौन सी रश्मि कब हुई कम्पित, कौन आँधी वहाँ पहुँच पायी?
कौन ठहरा सका उसे पल भर, कौन सी फूँक कब बुझा पायी।।"

अग्निरेखा के पूर्व भी महादेवी जी ने दीपक को प्रतीक मानकर अनेक गीत लिखे हैं– किन उपकरणों का दीपक, मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, सब बुझे दीपक जला दूँ, यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो, पुजारी दीप कहाँ सोता है, दीपक अब जाती रे, दीप मेरे जल अकम्पित घुल अचंल, पूछता क्यों शेष कितनी रात आदि।

महादेवी छायावाद के कवियों में औरों से भिन्न अपना एक विशिष्ट और निराला स्थान रखती हैं। इस विशिष्टता के दो कारण हैं – एक तो उनका कोमल हृदया नारी होना और दूसरा अंग्रेजी और बांग्ला के रोमांटिक और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होना। इन दोनों कारणों से एक ओर तो उन्हें अपने आध्यात्मिक प्रियतम को पुरुष मानकर स्वाभाविक रूप में अपना स्त्री – जनोचित प्रणयानुभूतियों को निवेदित करने की सुविधा मिली, दूसरी ओर प्राचीन भारतीय साहित्य और दर्शन तथा संत युग के रहस्यवादी काव्य के अध्ययन और अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन छायावादी कवियों के काव्य से निकट का परिचय होने के फलस्वरूप उनकी काव्याभिव्यंजना और बौद्धिक चेतना शत-प्रतिशत भारतीय परंपरा के अनुरूप बनी रही। इस तरह उनके काव्य में जहाँ कृष्ण भक्ति काव्य की विरह-भावना गोपियों के माध्यम से नहीं, सीधे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकाशित हुई हैं, वहीं सूफी पुरुष कवियों की भाँति उन्हें परमात्मा को नारी के प्रतीक में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

प्रकृति चित्रण:- अन्य रहस्यवादी और छायावादी कवियों के समान महादेवी जी ने भी अपने काव्य में प्रकृति के सुंदर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्हें प्रकृति में अपने प्रिय का आभास मिलता है और उससे उनके भावों को चेतना प्राप्त होती है। वे अपने प्रिय को रिझाने के लिए प्रकृति के उपकरणों से अपना श्रृंगार करती हैं:-

"शशि के दर्पण में देख-देख, मैंने सुलझाए तिमिर केश।
गूँथे चुन तारक पारिजात, अवगुंठन कर किरणें अशेष।"

छायावाद और प्रकृति का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। महादेवी जी के अनुसार– **'छायावाद की प्रकृति, घट-कूप आदि से भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों से प्रकट एक महाप्राण बन गई स्वयं चित्रकार होने के कारण उन्होंने प्रकृति के अनेक भव्य तथा आकर्षक चित्र साकार किए हैं। महादेवी जी की कविता के दो कोण हैं– एक तो उन्होंने चेतनामयी प्रकृति का स्वतंत्र विश्लेषण किया है–'**

'कनक से दिन मोती सी रात, सुनहली सांझ गुलाबी प्रात मिटाता रंगता बारंबार कौन जग का वह चित्राधार?'

अथवा *'तारकमय नव बेणी बंधन शीश फूल पर शशि की नूतन रश्मि वलय सित अवगुंठन धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी।'*

दूसरा प्रकृति को भाव-जगत का अंग मानकर उन्होंने मुख्यत: रहस्य साधना का चित्रण किया है। कवयित्री को अनंत के दर्शन के लिए क्षितिज के दूसरे छोर को देखने की जिज्ञासा है–

'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?

जा रहे जिस पथ से युगलकल्प छोर क्या है?'

उन्होंने समस्त भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से की है। 'सांध्यगीत' में वे अपने जीवन की तुलना सांध्य-गगन से करती हैं-

'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग छाया-सी काया वीतराग'

कल्पना भावना और पीड़ा :- महादेवी जी की सृजन-प्रक्रिया विशुद्ध भावात्मक रही है। उनकी धारणाओं को युग के विभिन्न वाद परिवर्तित नहीं कर सके हैं। उन्होंने किसी एक दर्शन को केंद्र नहीं बनाया। जिसे जीवन अथवा समाज के लिए उपयुक्त समझा उसे आत्मसात कर लिया। विशुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति की पोषक होने के कारण उनकी समस्त काव्य कृतियों में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। वे छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को मानती हैं और प्रकृति को उसका साधन मानती हैं - **'छायावाद ने मनुष्य हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से बिंब प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था, जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।'** उन्होंने छायावाद का विवेचन करते हुए प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध का प्रतिपादन विशेष रूप से किया है। इसके साथ ही उन्होंने सूक्ष्म या अंतर की सौंदर्य वृत्ति के उद्घाटन पर बल दिया है।

महादेवी की कविता अनुभूति से परिपूर्ण है, पंत और निराला की कविताएं दार्शनिकता के बोझ से दब-सी गई हैं, किंतु महादेवी जी के काव्य में ऐसी बात नहीं। उसमें दार्शनिकता होते हुए भी सरसता है। वह सर्वत्र भावना प्रधान है। महादेवी जी के काव्य में संगीतात्मकता का विशेष गुण है। वे गीत लेखिका हैं। गीतों की लय छंदों पर उनका अद्भुत अधिकार हर जगह दिखाई देता है। वे महादेवी माधुर्य भाव की उपासिका हैं। ब्रह्म को उन्होंने प्रियतम के रूप में देखा है। अपने प्रेमपात्र के लिए उन्होंने 'प्रिय' संबोधन दिया है। उनके गीत उज्ज्वल प्रेम के गीत हैं। इसके द्वारा अपने अंतर की जिस सात्विकता का उन्होंने परिचय दिया है वह उनकी काव्य-गरिमा का आधार स्तंभ है। जब जीवन में दिव्य प्रेम के मधु संगीत की रागिनी झंकृत हुई तब उसने कवयित्री के मन में असंख्य नए स्वप्नों को जन्म दिया।

'इन ललचाई आँखों पर पहरा था जब व्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का।'

चिर तृषित आत्मा युग-युग से सर्वविश्वव्यापी परमात्मा से मिलन के लिए व्याकुल रही है। महादेवी जी की वेदनानुभूति संकल्पात्मक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। 'मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ' कहकर वे इसी विरह को जीवन की साधना मानती हैं। उन्होंने पीड़ा की महत्ता ही घोषित नहीं की उसका सुखद पक्ष भी स्पष्ट किया है। उनके सुख का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जब दु:ख अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है तब वही दु:ख सुख का रूप धारण कर लेता है।

'चिर ध्येय यही जलने का ठंडी विभूति हो जाना
है पीड़ा की सीमा यह दुख का चिर सुख हो जाना'

छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही उनके हृदय का भाव केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ, छूट छूटकर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलनसुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि- मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता। एक पक्ष में अनंत सुषमा, दूसरे पक्ष में अपार वेदना, विश्व के छोर हैं जिनके बीच उसकी अभिव्यक्ति होती है।

"यह दोनों दो ओरें थीं संसृति की चित्रपटी की
उस बिन मेरा दुख सूना मुझ बिन वह सुषमा फीकी।
पीड़ा का चसका इतना है कि कृ
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा तुममें ढूँढूगी पीड़ा"

वे दु:ख को जीवन की स्फूर्ति तथा प्रेरणा तत्व मानती हैं। उनकी दृष्टि में वेदना का महत्व तीन कारणों से है- वह अंत:करण को शुद्ध करती है, प्रिय को अधिक

निकट लाती है और प्रियतम की शोभा भी उसी पर आधारित है। अत: उनके काव्य में दु:ख के तीन रूप मिलते हैं निर्माणात्मक, करुणात्मक और साधनात्मक। वे बौद्धों के नैराश्यवाद को स्वीकार नहीं करतीं। उन्होंने दु:ख को मधुर भाव के रूप में स्वीकार किया है। जिसमें वह अलौकिक प्रिय के लिए दीप बनकर जलना चाहती है।

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल, प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

उनके अनुसार दु:ख जीवन का ऐसा काव्य है जो समस्त विश्व को एक-सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। उनका दु:ख व्यष्टिपरक न होकर समष्टिपरक रहा है। उन्होंने कहा है व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दु:ख विश्व सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व प्रदान करता है। उनका संदेश है।

'मेरे हँसते अधर नहीं, जग की आँसू लड़ियाँ देखो, मेरे गीले पलक छुओ मत मुरझाई कलियाँ देखो।'

महादेवी जी का रहस्यवाद :- छायावादी काव्य में एक आध्यात्मिक आवरण तथा छाया रही है। अत: रहस्यवाद छायावादी कविता की प्रवृत्ति विशेष के लिए प्रयुक्त किया गया। **महादेवी जी** के अनुसार **'रहस्य का अर्थ वहाँ से होता है जहाँ धर्म की इति है। रहस्य का उपासक हृदय में सामंजस्यमूलक परमतत्व की अनुभूति करता है और वह अनुभूति परदे के भीतर रखते हुए दीपक के समान अपने प्रशांत आभास से उसके व्यवहार को स्निग्धता देती है।'** महादेवी जी की रुचि सांसारिक भोग की अपेक्षा आध्यात्मिकता की ओर अधिक दर्शित होती है। रहस्यानुभूति की पाँच अवस्थाएँ उनके काव्य में लक्षित होती हैं। जिज्ञासा, आस्था, अद्वैतभावना, प्रणयानुभूति विरहानुभूति। महादेवी जी में उस परमत्व को देखने की, जानने की निरंतर जिज्ञासा रही है। वह कौतूहल से पूछती हैं-

'कौन तुम मेरे हृदय में
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित?'

उनकी अज्ञात प्रियतम के प्रति आस्था केवल बौद्धिक न होकर रागात्मक है-

'मूक प्रणय से मधुर व्यथा से स्वप्नलोक के से आह्वान
वे आए चुपचाप सुनाने तब मधुमय मुरली की तान।'

आत्मा और परमात्मा के अद्वैतत्व के लिए 'बीन और रागिनी' का प्रतीक उनकी अभिनव कल्पना एक सुंदर उदाहरण है। उनकी यह भावना कोरे दार्शनिक ज्ञान या तत्व चिंतन पर आधारित नहीं है अपितु उसमें हृदय का भावात्मक योग भी लक्षित होता है-

'मैं तुमसे हूँ एक-एक है जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास।'

भाषा और शैली :- महादेवी जी की कुछ प्रारंभिक कविताएँ ब्रजभाषा में हैं, किंतु बाद की संपूर्ण रचनाएँ खड़ी बोली में हुई हैं। महादेवी जी की खड़ी बोली संस्कृत-मिश्रित है। वह मधुर कोमल और प्रवाहपूर्ण है। उसमें कहीं भी नीरसता और कर्कशता नहीं। वैसे महादेवी जी की भाषा सरल है, किंतु सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण में वह संकेतात्मक होने के कारण कहीं-कहीं अस्पष्ट भी हो गई है। शब्द चयन अत्यंत सुंदर है, किंतु भाषा में कोमलता और मधुरता लाने के लिए कहीं-कहीं शब्दों का अंग-भंग अवश्य मिलता है। जैसे- आधार का अधार, अभिलाषाओं का अभिलाषें आदि।

महादेवी जी की शैली में निरंतर विकास होता रहा है। 'नीहार' में उनकी शैली प्रारंभिक अवस्था में है। इस प्रारंभिक अवस्था की शैली में भाव कम हैं, शब्द अधिक। 'नीरजा' की शैली में भाव और भाषा की समानता है। 'दीपशिखा' की रचना में उनकी शैली प्रौढ़ हो गई है और थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता आ गई है। भावों को मूर्त रूप देने में महादेवी जी अत्यंत कुशल थीं। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रतीकों और संकेतों का आश्रय अधिक लिया है। अत: उनकी शैली कहीं-कहीं कुछ जटिल और दुरूह हो गई है और पाठक को कविता का अर्थ समझने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है।

रस छंद, अलंकार, शिल्प और प्रतीक :- महादेवी की कविता "वियोग-श्रृंगार" प्रधान है। वियोग के जैसे रहस्यमय चित्र उन्होंने अंकित किए हैं, वैसे अत्यंत दुर्लभ हैं। करुण रस की व्यंजना भी उनके काव्य में हुई है। उनके काव्य में सभी छंद मात्रिक हैं। और वे अपने आप में पूर्ण हैं। उनमें संगीत और लय का विशेष

रूप से समावेश है। अलंकार योजना अत्यंत स्वाभाविक है और अलंकारों का प्रयोग भावों को तीव्रता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ है। (समानोक्ति, उपमा, रूपक, अलंकारों की अधिकता है। शब्दालंकारों की ओर महादेवी जी की विशेष रुचि नहीं प्रतीत होती फिर भी क्योंकि उनके गीत उनकी अव्यहत साहित्य-साधना के परिणाम हैं अत: कलागीतों के सभी शैल्पिक गुणों से युक्त हैं। उनके काव्य में छायावादी कविता के शिल्प विधान का सफल रूप द्रष्टव्य है। गीतिकाव्य के तत्व अनुभूति प्रवणता, आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, भावान्वित, गेयता आदि उनके काव्य में पूर्णत: दर्शित होते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है, 'सुख-दु:ख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने-चुने शब्दों में वर्णन करना ही गीत है।' अभिव्यक्ति की कलात्मकता, लाक्षणिकता, स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म उपमानों का ग्रहण, कोमलकांत पदावली, कल्पना का वैभव, चित्रात्मकता, प्रतीक विधान, बिंब योजना आदि कलातत्वों का उनकी कविता में पूर्ण अभिनिवेश है। उनकी शिल्प प्रतिभा अनुपम है। उनके अंतस का कलाकार कला के प्रति सर्वदा सचेष्ट रहा है। उदारण के लिए:-

'निशा को धो देता राकेश चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता यों मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल।'

बिंबात्मकता-

'मोती-सी रात कनक से दिन
गुलाबी प्रात सुनहली साँझ।'

'दीप' महादेवी के काव्य का महत्वपूर्ण प्रतीक है। इसके अतिरिक्त बीन और रागिनी, दर्पण और छाया, धन और दामिनी, रश्मि और प्रकाश उनके काव्य में बार-बार आए हैं। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में "महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का अभिमिश्रित रूप मिलता है। तितली के पंखों, फूलों की पंखुरियों से चुराई हुई कला और इन सबसे ऊपर स्वप्न-सा बुना हुआ एक वायवीय वातावरण- ये सभी तत्व जिसमें घुले-मिले रहते हैं वह है महादेवी की कविता।"

महादेवी जी की सम्पूर्ण साहित्य साधना को समग्रत: देखें तो छायावाद के लिए अभिव्यक्त डॉ. नगेंद्र की परिभाषात्मक अभिव्यक्ति संपूर्णत: सटीक प्रतीत होती है; **"छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है"**। महादेवी जी का सम्पूर्ण जीवन एवं साहित्य समाज एवं साहित्य की स्थूलता के प्रति एक रहस्यमय एवं सूक्ष्म विद्रोह सा जान पड़ता है। उन्होंने अपनी लेखनी को केवल काव्य अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं रखा किंतु अपने गद्य लेखन से गद्य लेखन के क्षेत्र में भी अपनी सशक्त मौजूदगी दर्ज की और हिंदी साहित्य जगत में एक अद्वितीय हस्ताक्षर बन गईं।

संदर्भ स्त्रोत :

1 वर्मा, धीरेन्द्र (1985) 'हिंदी साहित्य का इतिहास' वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड. प. 719

2 शुक्ल, रामचन्द्र (संवत 2038) हिन्दी साहित्य का इतिहास (उन्नीसवां संस्करण) काशी, भारत: नागरी प्रचारिणी सभा प. 487

3 वांजपे, प्रो शुभदा (2006) पुष्पक (अर्ध-वार्षिक पत्रिका) अंक-6 हैदराबाद, भारत: कादम्बिनी क्लब प. 116-117

4 भाषा रत्नाकर इलाहाबाद: नवीन प्रकाशन मंदिर 1968. प. 312

किशन कुमार दास
सहायक प्रबंधक (राभा)
अं.का., सतना

"भावना, ज्ञान और कर्म जब एक सम पर मिलते हैं तभी युग प्रवर्तक साहित्यकार प्राप्त होता है।"
-महादेवी वर्मा

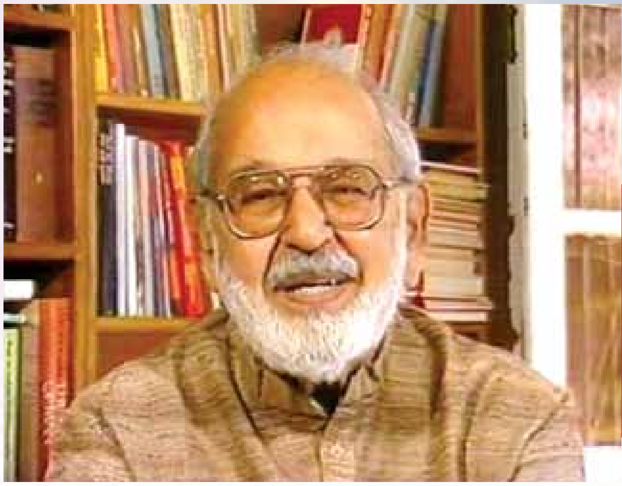

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (7 मार्च, 1911 - 4 अप्रैल, 1987) को कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्व-खुदाई शिविर में हुआ था। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। बी.एससी. करके अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर बम बनाते हुए पकड़े गये और वहाँ से फरार भी हो गए। सन् 1930 ई. के अन्त में पकड़ लिये गये। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व के एकान्तमुखी प्रखर कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे फोटोग्राफर और सत्यान्वेषी पर्यटक भी थे।

जीवन परिचयः-

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख रेख में घर पर ही संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। 1925 में पंजाब से एंट्रेंस की परीक्षा पास की और उसके बाद मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहाँ से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एससी. करने के लिए लाहौर के फॅरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 में बी. एससी. करने के बाद एम.ए. में उन्होंने अंग्रेजी विषय लिया; पर क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी।

कार्यक्षेत्रः-

इनका जीवन 1930 से 1936 तक विभिन्न जेलों में कटा। 1936-37 में सैनिक और विशाल भारत नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक ब्रिटिश सेना में रहे; इसके बाद इलाहाबाद से 'प्रतीक' नामक पत्रिका निकाली और ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी स्वीकार की। देश-विदेश की यात्राएं की जिसमें उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन का काम किया। दिल्ली लौटे और 'दिनमान साप्ताहिक', 'नवभारत टाइम्स', अंग्रेजी पत्र 'वाक्' और 'एवरीमैंस' जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने 'वत्सलनिधि' नामक एक न्यास की स्थापना की जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। दिल्ली में ही 4 अप्रैल 1987 को उनकी मृत्यु हुई 1964 में 'आँगन के पार द्वार' पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रमुख कृतियांः-

कविता संग्रह : भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942, इत्यलम् 1946, हरी घास पर क्षण भर 1949, बावरा अहेरी 1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये 1957, अरी ओ करुणा प्रभामय 1959, आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)।

- **कहानियाँ :** विपथगा 1937, परम्परा 1944, कोठरी की बात 1945, शरणार्थी 1948, जयदोल 1951
- **उपन्यास :** शेखर एक जीवनी- प्रथम भाग (उत्थान) 1941, द्वितीय भाग (संघर्ष) 1944, नदी के द्वीप 1951, अपने अपने अजनबी 1961

- **यात्रा वृतान्त :** अरे यायावर रहेगा याद? 1953, एक बूँद सहसा उछली 1960
- **निबंध संग्रह :** सबरंग, त्रिशंकु (1945 ई०), आत्मनेपद (1960 ई०), आधुनिक साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल (1971 ई०), सब रंग और कुछ राग (1956 ई०), लिखी कागद कोरे (1972 ई०)
- **आलोचना :** त्रिशंकु 1945, आत्मनेपद 1960, भवन्ती 1971, अद्यतन 1971 ई०
- **संस्मरण :** स्मृति लेखा
- **डायरियां :** भवंती, अंतरा और शाश्वती
- **विचार गद्य :** संवत्सर
- **नाटक :** उत्तरप्रियदर्शी
- **जीवनी :** रामकमल राय द्वारा लिखित शिखर से सागर तक

संपादित ग्रंथ : आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह)1942, तार सप्तक (कविता संग्रह) 1943, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह) 1951, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह), सम्पूर्ण 1959, नये एकांकी 1952, रूपांबरा 1960

उनका लगभग समग्र काव्य सदानीरा (दो खंड) नाम से संकलित हुआ है तथा अन्यान्य विषयों पर लिखे गए सारे निबंध 'सर्जना और सन्दर्भ' तथा 'केंद्र और परिधि' नामक ग्रंथों में संकलित हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ अज्ञेय ने प्रथम तारसप्तक, दूसरा तारसप्तक और तीसरा तारसप्तक जैसे युगांतरकारी काव्य संकलनों तथा **'पुष्करिणी'** और **'रूपांबरा'** जैसे काव्य-संकलनों का भी संपादन किया है। वे 'वत्सलनिधि' से प्रकाशित आधा दर्जन निबंध-संग्रहों के भी संपादक हैं। प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखीं और एक समय के बाद कहानी लिखना बिलकुल बंद कर दिया, परंतु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दिशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। निस्संदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका-पुरूष थे जिसने हिंदी साहित्य में भारतेंदु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रा-वृत्त, निबन्ध, गीति-नाट्य, ललित निबन्ध, डायरी जैसी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया।

अज्ञेय के विस्तृत और वैविध्यपूर्ण जीवनानुभव उनकी रचनाओं में यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। उनकी कविताएं, कहानियां या उपन्यास सभी रचनाओं में उनके जीवन के विभिन्न कालों की संवेदना तो अभिव्यक्त हुई ही है, रचनाकालीन जीवन यथार्थ भी अपने पूर्ण रूप में अभिव्यक्ति पा सका है।

करीब पांच दशक तक फैले अपने रचना संसार में अज्ञेय ने तीन उपन्यास लिखे- शेखर: एक जीवनी (दो भाग) नदी के द्वीप और अपने-अपने अजनबी।

'शेखर एक जीवनी' के पहले भाग का प्रकाशन 1941 में हुआ। ये वो दौर था, जब भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई निर्णायक मोड़ पर पहुंच गई थी। स्वयं अज्ञेय ने भी हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी के सदस्य के रूप में इस आंदोलन में हिस्सा लिया था, गिरफ्तार हुए थे, जेल गए थे। चार साल के बंदी जीवन में अज्ञेय ने स्वतंत्रता का महत्व और करीब से जाना था।

शेखर: एक जीवनी, एक कालजयी उपन्यास

शेखर: एक जीवनी की भूमिका में लिखते हैं कि यह जेल के स्थगित जीवन में केवल एक रात में महसूस की गई घनीभूत वेदना का ही शब्दबद्ध विस्तार है। शेखर जन्मजात विद्रोही हैं। वो परिवार, समाज, व्यवस्था, तथाकथित मर्यादा सबके प्रति विद्रोह करता है। वो स्वतंत्रता का आग्रही है और व्यक्ति की स्वतंत्रता को उसके विकास के लिए बेहद जरूरी मानता है।

कहते हैं यथार्थवादी साहित्य में किसी भी पात्र का जन्म अकस्मात् नहीं होता या यों कहें वो महज कोरी कल्पना नहीं होता। कार्य-कारण संबंधों के आधार पर ही किसी यथार्थवादी रचना में घटनाओं और पात्रों का जन्म और विकास होता है। 'शेखर' में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की जो छटपटाहट पूरे उपन्यास में नजर आती है वो दरअसल प्रेमचंद के गोदान (1936) के पात्र 'गोबर' के चरित्र का स्वाभाविक विकास है।

'गोबर' की संवेदना का ही स्वाभाविक विकास है अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी' जो अपने अंतर्मन की

आवाज सुनता है और वही करता है जिसकी गवाही उसका विवेक देता है। वो स्कूल नहीं जाना चाहता क्योंकि वो मानता है कि स्कूलों में टाइप बनते हैं जबकि शेखर व्यक्ति बनना चाहता है। एक ऐसा व्यक्ति जो पूरी ईमानदारी से अपने जीवन के सुख-दुख से गुजरना चाहता है। वो पिता की सलाह को नजरअंदाज कर अंग्रेजी की बजाय हिंदी में लेखन करना चाहता है क्योंकि अंग्रेजी से उसे दासता की अनुभूति होती है।

इस उपन्यास में 'शेखर' एक निहायत ईमानदार व्यक्ति है, अपनी अनुभूतियों और जिज्ञासाओं के प्रति बेहद ईमानदार। जीवन की नई-नई परिस्थितियों में उसके मन में कई सवाल उठते हैं और वह अनुभव करता चलता है, सीखता चलता है।

अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'शेखर' के ज़रिए एक व्यक्ति के विकास की कहानी बुनी है जो अपनी स्वभावगत अच्छाइयों और बुराइयों के साथ देशकाल की समस्याओं पर विचार करता है, अपनी शिक्षा-दीक्षा, लेखन और आजादी की लड़ाई में अपनी भूमिका के क्रम में कई लोगों के संपर्क में आता है लेकिन उसके जीवन में सबसे गहरा और स्थायी प्रभाव शशि का पड़ता है जो रिश्ते में उसकी बहन लगती है, लेकिन दोनों के रिश्ते भाई-बहन के संबंधों के बने-बनाए सामाजिक ढांचे से काफी आगे निकलकर मानवीय संबंधों को एक नई परिभाषा देते हैं।

हिंदी साहित्य के लिए शशि-शेखर संबंध तत्कालीन भारतीय समाज में एक नई बात थी जिसे लेकर आलोचकों के बीच उपन्यास के प्रकाशन के बाद से लेकर आज तक बहस होती है।

शेखर एक जगह शशि से कहता है- 'कब से तुम्हें बहन कहता आया हूं, लेकिन बहन जितनी पास होती है, उतनी पास तुम नहीं हो और जितनी दूर होती है, उतनी दूर भी नहीं हो'- ये भारतीय उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों की एक नई अभिव्यक्ति थी।

'शेखर' दरअसल एक व्यक्ति के बनने की कहानी है जिसमें उसके अंतर्मन की विभिन्न परतों के कथा क्रम के जरिए मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने की कोशिश अज्ञेय ने की है। इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद कुछ आलोचकों ने कहा था कि ये अज्ञेय की ही अपनी कहानी है।

लेकिन अज्ञेय ने इसका स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि शेखर के जीवन की कुछ घटनाएं और स्थान उनके जीवन से मिलते-जुलते हैं लेकिन जैसे-जैसे शेखर का विकास होता गया है वैसे-वैसे शेखर का व्यक्ति और रचनेवाला रचनाकार एक-दूसरे से अलग होते गए हैं।

दूसरा उपन्यास

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है- 'नदी के द्वीप' (1951). यह भी एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें एक तरह से यौन संबंधों को केंद्र बनाकर जीवन की परिक्रमा की गई है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं भुवन, रेखा, गौरा और चंद्रमाधव।

भुवन विज्ञान का प्रोफेसर है, रेखा एक पढ़ी-लिखी पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री है, गौरा भुवन की छात्रा है। उपन्यास में दो अन्य गौण पात्र हैं हेमेंद्र और डॉक्टर रमेशचंद्र। हेमेंद्र रेखा का पति है जो केवल उसे पाना चाहता है और जब हासिल नहीं कर पाता तो उसे छोड़ देता है।

उसे सौंदर्यबोध, नैतिकता जैसे मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं। डॉक्टर रमेशचंद्र रेखा का नया पति है जो एक सुलझा हुआ इनसान है।

'शेखर' की तुलना में इस उपन्यास में घटनाएं बहुत कम हैं क्योंकि उपन्यास के पात्र बाहर बहुत कम जीते हैं।

वे ज्यादातर आत्ममंथन या आत्मालाप कर रहे होते हैं। ये इतने संवेदनशील पात्र हैं कि बाहर की जिंदगी की हल्की सी छुअन भी इन्हें भीतर तक हिला कर रख देती है। अज्ञेय ने उपन्यास में पात्रों की इसी भीतरी जिंदगी को विभिन्न, प्रतीकों, बिम्बों और कविताओं के जरिए उभारने की कोशिश की है।

उपन्यास में भुवन रेखा और गौरा दोनों के बेहद करीब है। ये तीनों ही मध्यवर्गीय संवेदना से भरे, आधुनिकता बोध वाले बुद्धिजीवी पात्र हैं। लेकिन इनकी सबसे बड़ी समस्या यह है कि वे भीतर ही भीतर चाहे जितनी ही लंबी विचार सरणि बना लें, उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाते। यहां तक कि एक-दूसरे के लिए अपनी भावनाएं भी। इस उपन्यास में व्यक्ति नदी के द्वीप की तरह है।

चारों तरफ नदी की धारा से घिरा लेकिन फिर भी अकेला और अपनी सत्ता में स्वतंत्र है।

उपन्यास के मुख्य पात्र रेखा और भुवन एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं। दोनों के बीच शारीरिक संबंध भी हैं लेकिन फिर भी रेखा भुवन को छोड़कर डॉक्टर रमेश चंद्र से विवाह करती है। गौरा और भुवन के बीच भी एक-दूसरे के लिए आकर्षण है लेकिन वे उसे सही रूप में व्यक्त नहीं कर पाते।

कुल मिलाकर ये उपन्यास अलग-अलग पात्रों के जीवन, उनके सुख-दुख, उनके आंतरिक भावावेश को कवित्वपूर्ण भाषागत अभिव्यक्तियों के ज़रिए बयां तो करता है लेकिन युगीन यथार्थ को पूरी तरह स्पर्श नहीं कर पाता और इसकी वजह है पात्रों का अपने भीतर जीते जाना, बाहर या समाज में नहीं।

तीसरा उपन्यास

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है 'अपने-अपने अजनबी' (1961)।

सार्त्र, किर्केगार्ड, हाइडेगर के पश्चिमी अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित इस उपन्यास में सेल्मा और योके दो मुख्य पात्र हैं।

कथानक बेहद छोटा है। सेल्मा मृत्यु के निकट खड़ी कैंसर से पीड़ित एक वृद्ध महिला है और योके एक नवयुवती। दोनों को बर्फ से ढके एक घर में साथ रहने को मजबूर होना पड़ता है जहां जीवन पूरी तरह स्थगित है।

इस उपन्यास में स्थिर जीवन के बीच दो इंसानों की बातचीत के जरिए उपन्यासकार ने यह समझाने की कोशिश की है कि व्यक्ति के पास वरण की स्वतंत्रता नहीं होती। न तो वो जीवन अपने मुताबिक चुन सकता है और न ही मृत्यु।

सेल्मा मृत्यु के क़रीब है और वो चाहती थी कि उस बर्फ घर में अकेले रहते हुए उसकी मृत्यु हो जाए लेकिन संयोगवश योके वहां पहुंच जाती है और उसे योके जैसी अजनबी के साथ वो सबकुछ बांटना पड़ता है जो वो अपने सगों के साथ नहीं बांटना चाहती थी। वरण की स्वतंत्रता और जीवन के विविध सत्यों को लेकर दोनों ही पात्र एक-दूसरे से जो बातचीत करते हैं उसी के जरिए अस्तित्ववादी दर्शन को अज्ञेय ने पूरी तरह स्पष्ट करने की कोशिश की है लेकिन उसे एक नई भारतीय व्याख्या भी दी है।

सेल्मा मृत्यु के करीब है लेकिन फिर भी जीवन से भरी हुई है जबकि योके युवती है, जीवन में उसे बहुत कुछ देखना बाकी है लेकिन आसन्न मृत्यु के भय से वो इतनी आक्रांत है कि जीते हुए भी उसका आचरण मृत के समान है। वो घोर निराशा के अंधेरे में डूब जाती है। योके बार-बार सेल्मा से कहती है कि व्यक्ति चुनने के लिए स्वतंत्र होता है।

उपन्यास में सेल्मा की मौत हो जाती है। योके बर्फ के घर से बाहर निकल जाती है लेकिन उस स्थगित जीवन में जिंदगी का जैसा क्रूर चेहरा उसने देखा था वह उसे भुला नहीं पाती। वरण की स्वतंत्रता की तलाश में अंत में वो यह कहते हुए जहर खाकर अपने जीवन का अंत कर देती है कि उसने जो चाहा वो चुन लिया।

बेहद छोटे कथानक के जरिए अज्ञेय ने इस उपन्यास में अस्तित्ववाद की पश्चिमी निराशावादी व्याख्या में भारतीय आस्थावादी व्याख्या को जोड़ने का प्रयास किया है।

अज्ञेय ने अपने इन तीनों ही उपन्यासों के जरिए भारतीय औपन्यासिक विकास को एक नई ऊंचाई दी है। 'शेखर' एक जीवनी जहां व्यक्ति स्वतंत्रता की अनुभूति और अभिव्यक्ति की एक मार्मिक यथार्थवादी अभिव्यक्ति है वहीं 'अपने-अपने अजनबी' मृत्यु के आतंक के बीच जीवन जीने की कला का यथार्थवादी दस्तावेज है।

अज्ञेय भाषा की श्रेष्ठता और उसमें नए-नए प्रयोगों के आग्रही थे। इन तीनों ही उपन्यासों में प्रयोग और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर अज्ञेय ने भाषा को एक नया संस्कार दिया है।

भूपेश बारोट
प्रबंधक (राभा)
कॉर्पोरेट कार्यालय

प्रकृति के सुकुमार कवि- सुमित्रानंदन पंत

छायावाद को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है, छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं कविवर सुमित्रानंदन पंत। प्रकृति के उपादानों का प्रतीक व बिम्ब के रूप में प्रयोग उनके काव्य की अनन्य विशेषता रही है। उन्होंने प्रकृति के मानवी और कोमल रूप का प्रयोग करते हुए झरना, बर्फ, पुष्प, लता, भ्रमर, शीतल पवन, गगन से उतरती संध्या को सहज रूप से अपने काव्य के उपदान बनाए। इसलिए हिन्दी साहित्य में वो प्रकृति के सुकुमार कवि और कोमल कल्पना के कवि कहलाए।

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म बागेश्वर ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई 1900 ई. को हुआ। बचपन में उनका नाम गोंसाई दत्त रखा गया। 1910 में, वह शिक्षा प्राप्त करने गवर्नमेंट हाईस्कूल अल्मोड़ा गए। यहीं उन्होंने अपना नाम गोसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। हाईस्कूल के बाद उच्च शिक्षा हेतु इलाहाबाद गए। 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन करने लगे। इलाहाबाद में ही उनकी काव्यचेतना का विकास हुआ।

पंत जी की काव्य यात्रा- पंत जी ने सात वर्ष की उम्र से कविता लिखना शुरू कर दिया था। उनकी साहित्यिक यात्रा के तीन प्रमुख पड़ाव हैं- प्रथम में वे छायावादी हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से प्रेरित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविन्द दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी दिखाई दिए। आरंभिक दौर की उनकी कविताएं वीणा में संकलित हैं। 1926 में उनका प्रसिद्ध काव्य संकलन 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। इसी दौरान वे मार्क्स व फ्रायड की विचारधारा के प्रभाव में आए। 1938 में उन्होंने 'रूपाभ' नामक प्रगतिशील मासिक पत्र निकाला। शमशेर, रघुपति सहाय आदि के साथ वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े रहे। अपने रचनाकाल के दौरान वे 1950 से 1957 तक आकाशवाणी से जुड़े रहे और मुख्य-निर्माता के पद पर भी कार्य किया। बाद में उनकी विचारधारा अरविन्द दर्शन से प्रभावित भी हुई जो बाद की उनकी रचनाओं 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में देखी जा सकती है। "वीणा" तथा "पल्लव" में संकलित उनके छोटे गीत प्रकृति के विराट सौंदर्य तथा पवित्रता से साक्षात्कार कराते हैं। "युगांत" की रचनाओं के लेखन तक वह प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े प्रतीत होते हैं। "युगांत" से "ग्राम्या" तक उनकी काव्ययात्रा प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्घोषणा करती है। सुमित्रानंदन पंत की कुछ अन्य काव्य कृतियाँ हैं - ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, चिदंबरा, सत्यकाम आदि। उनके जीवनकाल में उनकी 28 पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें कविताएं, पद्य-नाटक और निबंध शामिल हैं। पंत अपने विस्तृत वाङ्मय में एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी के रूप में सामने आते हैं किंतु उनकी सबसे कलात्मक कविताएं 'पल्लव' में संगृहीत हैं। उन्होंने मधुज्वाल नाम से उमर खय्याम की रुबाइयों का हिंदी अनुवाद किया और डॉ. हरिवंश राय बच्चन के साथ संयुक्त रूप से 'खादी के फूल' नामक

कविता संग्रह प्रकाशित करवाया।

पुरस्कार एवं सम्मान - चिदम्बरा काव्यकृति पर पंत जी को 1968 में हिन्दी साहित्य का सबसे प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। कला और बूढ़ा चांद पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (1960) से सम्मानित किया गया। हिंदी साहित्य सेवा के लिए उन्हें पद्मभूषण (1961), साहित्य अकादमी तथा सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार जैसे उच्च श्रेणी के सम्मानों से अलंकृत किया गया।

सुमित्रानंदन पंत के नाम पर कौसानी में उनके पुराने घर को, 'सुमित्रानंदन पंत वीथिका' के नाम से एक संग्रहालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। इसमें उनके व्यक्तिगत प्रयोग की वस्तुओं जैसे कपड़ों, कविताओं की मूल पांडुलिपियों, छायाचित्रों, पत्रों और पुरस्कारों को प्रदर्शित किया गया है। इसमें एक पुस्तकालय भी है, जिसमें उनकी व्यक्तिगत तथा उनसे संबंधित पुस्तकों का संग्रह है।

पंत जी का संपूर्ण साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के आदर्शों से प्रभावित रहा है। जहां प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति और सौंदर्य के रमणीय चित्र मिलते हैं वहीं दूसरे चरण की कविताओं में छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाओं व कोमल भावनाओं के और अंतिम चरण की कविताओं में प्रगतिवाद और विचारशीलता के भाव मिलते हैं। पंत परंपरावादी आलोचकों और प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी आलोचकों के सामने कभी नहीं झुके। उन्होंने अपने ऊपर लगने वाले आरोपों को 'नम्र अवज्ञा' कविता के माध्यम से खारिज किया। वह कहते थे 'गा कोकिला संदेश सनातन, मानव का परिचय मानवपन'। पंत जी आजीवन अविवाहित रहे परंतु उनके अंतस्थल में नारी और प्रकृति के प्रति आजीवन सौन्दर्यपरक भावना रही। हिन्दी साहित्य के इस सितारे का सांसारिक अवसान 28 दिसम्बर 1977 को हुआ परंतु उनका साहित्य आज भी जीवंत रूप में मानवता को प्रेरित कर रहा है।

अर्चना पुरोहित
प्रबंधक (राभा)
अं.का., जयपुर

क्या होना चाहता हूँ

मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ।
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।
"अभी" नींद से रूबरू हुए जमाना हो गया,
एक बार माँ का बिछाया बिछौना चाहता हूँ।।
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ ,
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।
जमाने भर की दौलत में खुद को खो दिया,
इस वास्ते माँ के आँगन का प्यारा कोना चाहता हूँ।।
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ,
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।
चेहरा गुमसुम दिल है बंजर और आँखों में आंसू सूखे,
माँ तेरे प्यार की बारिश से खुद को भिगोना चाहता हूँ।।
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ।
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ ।।
झूठी शोहरत हवस सी दौलत और चेहरों पर सजे मुखौटे,
"माँ" तेरी सच्ची मूरत पर ये दुनिया खोना चाहता हूँ।।
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ,
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।
तुझ बिन जीवन कैसा जीवन सोचकर घबराता है मन,
माँ तुझसे जीवन भर की डोरी का सहारा चाहता हूँ।।
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ।
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।
दुनिया की बिछाई बारूद से बचने के वास्ते,
"अभी" माँ के आँचल में चुपचाप सोना चाहता हूँ मैं,
मैं क्या था क्या हूँ और क्या होना चाहता हूँ।
मैं एक बार माँ तुझसे जार-जार रोना चाहता हूँ।।

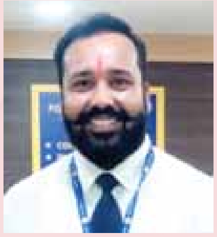

अभिषेक पटेल "अभी"
मुख्य प्रबंधक
अं.का., झांसी

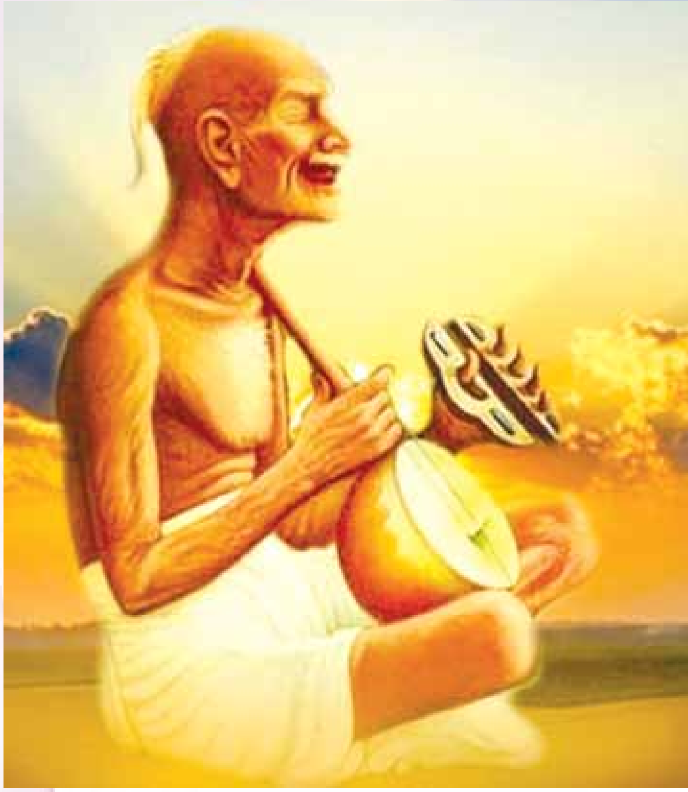

सूरदास जी के भ्रमरगीत का सार

भ्रमरगीत का शाब्दिक अर्थ है - भ्रमर का गान अथवा गुंजन। भ्रमरगीत काव्य परम्परा का मूल एवं आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्‌भागवत पुराण है जिसके दशम स्कंध के छियालीसवें एवं सैतालीसवें अध्याय में भ्रमरगीत प्रसंग है। इसमें भ्रमरगीत का प्रारम्भ श्रीकृष्ण के गोकुल लीला के स्मरण से होता है। श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गए और गोपियां विरह विकल हो गईं। कृष्ण मथुरा में लोकहितकारी कार्यों में व्यस्त थे किन्तु उन्हें ब्रज की गोपियों की याद सताती रहती थी, तब वे योग एवं ब्रह्मज्ञानी अपने मित्र उद्धव को गोपियों के पास का अपना संदेश देकर भेजते हैं, जिसमें गोपियां उद्धव को भ्रमर की उपमा देकर उद्धव पर कटाक्ष करती हैं। इसी संदेश को भ्रमरगीत अथवा उद्धव-संदेश कहा गया है।

प्रसिद्ध कवि सूरदासजी का प्रधान एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ सूरसागर है, जिसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त हैं, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमरगीत-प्रसंग' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिसके बारे में आचार्य शुक्ल ने कहा है, सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है।

सूरदास जी ने भ्रमरगीत में उन पदों को समाहित किया है, जिनमें श्रीकृष्ण मथुरा से योग एवं ब्रह्म के ज्ञाता उद्धव को गोपियों के लिए संदेश लेकर ब्रज भेजते हैं। चूंकि उद्धव का प्रेम एवं विरह से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह सदैव श्रीकृष्ण से रीति-नीति की, निर्गुण ब्रह्म और योग की बातें करता था, सदैव कहता है कि कौन माता, कौन पिता, कौन सखा, कौन बंधु? जिससे श्रीकृष्ण को चिन्ता हुई कि यह संसार मात्र विरिक्तयुक्त निर्गुण ब्रह्म से तो चलेगा नहीं, इसके लिये विरह और प्रेम की भी आवश्यकता है और उद्धव का सत्य कितना अपूर्ण और भ्रामक है। उद्धव का रंग-रूप कृष्ण के समान ही है। पर कृष्ण उन्हें देख कर पछताते हैं कि इस मेरे समान रूपवान युवक के पास काश, प्रेमपूर्ण बुद्धि भी होती। भला कहाँ यशोदा और नंद जैसे माता-पिता होने का सुख और राधा के साथ बीते पलों का आनंद और तीनों लोकों में ब्रज के गोप-गोपियों के साथ मिलकर खेलने जैसा सुख कहाँ? तब श्रीकृष्ण मन बनाते हैं कि क्यों न उद्धव को संदेश लेकर ब्रज भेजा जाए, संदेश भी पहुँच जाएगा और गोपियाँ उद्धव को प्रेम का पाठ भली भाँति पढ़ा देंगी।

तब यह प्रेम का मर्म जान सकेगा। दूसरी तरफ, उद्धव सोचते हैं कि वे विरह में जल रही गोपियों को निर्गुण ब्रह्म के प्रेम की शिक्षा दे कर उन्हें इस सांसारिक प्रेम की पीड़ा से मुक्ति दिला देंगे। कृष्ण मन ही मन मुस्कुरा कर उन्हें अपना पत्र थमाते हैं और सोचते हैं कि कौन किसे क्या सिखा कर आता है? अतएव, श्रीकृष्ण उद्धव को संदेश देकर ब्रज भेजते समय संशय में थे कि यह कैसे

संदेश ले जाएगा जो कि प्रेम का मर्म ही नहीं समझता, कोरा ब्रह्मज्ञान झाड़ता है।

अति सुन्दर तन स्याम सरीखो, देखत हिर पछताने।
ऐसे कैं वैसी बुधी होती, बर्ज पठऊं मन आने।।
या आगैं रस कथा प्रकासौं, जोग कथा प्रकटाऊं।
सूर ज्ञान याकौ दृढ़ किरके, जुवतिन्ह पास पठाऊं।।2।।

ब्रज पहुंच कर उद्धव श्रीकृष्ण का पत्र गोपियों को दे देते हैं और कहते हैं कि कृष्ण ने कहा है कि- हे गोपियों, हिर का संदेश सुनो। उनका यही उपदेश है कि समाधि लगा कर अपने मन में निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान करो। यह अज्ञेय, अविनाशी पूर्ण सबके मन में बसा है। वेद पुराण भी यही कहते हैं कि तत्वज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं है। इसी उपाय से तुम विरह की पीड़ा से छुटकारा पा सकोगी। अपने कृष्ण के सगुण रूप को छोड़ उनके ब्रह्म निराकार रूप की आराधना करो। उद्धव के मुख से अपने प्रिय का उपदेश सुन प्रेममार्गी गोपियाँ व्यथित हो जाती हैं। अब विरह की क्या बात वे तो बिन पानी पीड़ा के अथाह सागर डूब गईं

सुनौ गोपी हिर कौ संदेस।
किर समाधि अंतर गति ध्यावहु, यह उनको उपदेस।।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब घट रहे समाई
तत्वज्ञान बिनु मुक्ति नहीं, वेद पुराननि गाईं।
सगुन रूप तिज निरगुन ध्यावहु, इक चित्त एक मन लाईं
वह उपाई किर बिरह तरौ तुम, मिले ब्रह्म तब आईं।
दुसह संदेस सुन माधौ को, गोपि जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूड़ितं मनु बिन पानी ।।3।।

इस पर, जब गोपियाँ व्याकुल होकर उद्धव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो वे निराकार ब्रह्म और योग की बातें करने लगते हैं, तभी एक भ्रमर वहाँ आता है तो बस जली-भुनी गोपियों को मौका मिल जाता है और वह उद्धव को 'काले भँवरे' कह कर खूब कटाक्ष करती हैं। गोपियाँ भ्रमर के बहाने उद्धव को सुना-सुना कर कहती हैं - हे भंवरे! तुम मधु पीने में व्यस्त रहो, हमें भी मस्त रहने दो। तुम्हारे इस निर्गुण से हमारा क्या लेना-देना। हमारे तो सगुण साकार कान्हा चिरंजीवी रहें। तुम स्वयं तो पराग में लोट-लोट कर ऐसे बेसुध हो जाते हो कि अपने शरीर की सुध नहीं रहती और इतना मधुरस पी लेते हो कि सनक कर रस के विरुद्ध ही बातें करने लगते हो। हम तुम्हारे जैसी नहीं हैं कि तुम्हारी तरह फूल-फूल पर बहकें, हमारा तो एक ही है कान्हा जो सुन्दर मुख वाला, नीलकमल से नयन वाला यशोदा का दुलारा है। हमने तो उन्हीं पर तन-मन वार दिया है अब किसी निर्गुण पर वारने के लिये तन-मन किससे उधार लें?

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौं, चिरजीवहू कान्ह हमारे।।
लोटत पीत पराग कीच में, बीच न अंग सम्हारै।
भारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे।।
तुम जानत हो वैसी ग्वारिनी, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनी बिरनावत, जैसे आवत कारे।।
सुंदर बदन, कमल-दल लोचन, जसुमति नंद दुलारे।
तन-मन सूर अरिप रहीं स्यामह, का पै लेहिं उधारै ।।4।।

कोई गोपी उद्धव पर व्यंग्य करती है। मथुरा के लोगों का कौन विश्वास करे? उनके तो मुख में कुछ और मन में कुछ और है। तभी तो एक ओर हमें स्नेहिल पत्र लिख कर बना रहे हैं दूसरी ओर उद्धव को जोग के संदेश लेके भेज रहे हैं। जिस तरह से कोयल के बच्चे को कौआ प्रेमभाव से भोजन करा के पालता है और बसंत ऋतु आने पर जब कोयलें कूकती हैं तब वह भी अपनी बिरादरी में जा मिलता है और कूकने लगता है। जिस प्रकार भंवरा कमल के पराग को चखने के बाद उसे पूछता तक नहीं। ये सारे काले शरीर वाले एक से हैं, इनसे सम्बंध बनाने से क्या लाभ?

अब गोपियों ने तर्क किया कि हाँ तो उद्धव यह बताओ कि तुम्हारा यह निर्गुण किस देश का रहने वाला है? सच सौगंध देकर पूछते हैं, हंसी की बात नहीं है। इसके माता-पिता, नारी-दासी आखिर कौन हैं? कैसा है इस निर्गुण का रंग-रूप और भेष? किस रस में उसकी रूचि है? यदि तुमने हमसे छल किया तो तुम पाप और दंड के भागी होंगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियों के इस तर्क के आगे उद्धव की बुद्धि कुंद हो गई और वे चुप हो गए लेकिन गोपियों के व्यंग्य खत्म न हुए वे कहती रहीं-

निरगुन कौन देस को वासी।
मधुकर किह समुझाई सौंह दै, बूझतिं सांचि न हांसी।।
को है जनक, कौन है जननि, कौन नारि कौन दासी।
कैसे बरन भेष है कैसो, किहं रस मैं अभिलाषी।।
पावैगो पुनि कियौ आपनो, जो रे करेगौ गांसी।
सुनत मौन हवै रहयौ बावरो, सूर सबै मति नासी ।।6।।

इसके बाद, थक हार कर गोपियों ने व्यंग्य करना बंद कर दिया एवं उद्धव को अपने तन मन की दशा बताई उद्धव भक्ति के इस अदभुत स्वरूप से आश्चर्यचकित हो गए। गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव, हमारे मन दस बीस तो हैं नहीं, एक था वह भी श्याम के साथ चला गया। अब किस मन से ईश्वर की आराधना करें? उनके बिना हमारी इंद्रियां कमजोर हैं, शरीर मानो बिना सिर का हो गया है, बस उनके दर्शन की क्षीण सी आशा हमें करोड़ों वर्ष जीवित रखेगी। तुम तो कान्हा के सखा हो, योग के पूर्ण ज्ञाता हो। तुम कृष्ण के बिना भी योग के सहारे अपना उद्धार कर लोगे। हमारा तो नंद कुमार कृष्ण के सिवा कोई ईश्वर नहीं है।

उधौ मन ना भए दस बीस।
एक हुतौ सौ गयौ स्याम संग, को आराधे ईस।।
इंद्री सिथिल भई केसव बिनु, ज्यौं देही बिनु सीस।
आसा लागि रहित तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारै नंद-नंदन बिनु, और नहीं जगदीस ।।10।।

अंततः गोपियाँ राधा के विरह की दशा बताती हैं, ब्रज के हाल बताती हैं। अंततः गोपियों का प्रेममय सगुण उद्धव के निर्गुण पर हावी हो जाता है। कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम को देख कर उद्धव भाव विभोर होकर कहते हैं मेरा मन आश्चर्यचकित है कि मैं आया तो निर्गुण ब्रह्म का उपदेश लेकर था और प्रेममय सगुण का उपासक बन कर जा रहा हूँ। मैं तुम्हें गीता का उपदेश देता रहा, जो तुम्हें छू तक न पाया और न तुम्हारे मन को परिवर्तित कर पाया। अपनी अज्ञानता पर लज्जित हूँ कि किसे उपदेश देता रहा जो स्वयं लीलामय हैं? अब समझा कि श्रीकृष्ण ने मुझे यहाँ मेरी अज्ञानता का अंत करने भेजा था। तुम लोगों ने मुझे जो स्नेह दिया उसका आभारी हूँ। सूरदास कहते हैं कि उद्धव अपने योग के बेड़े को गोपियों के प्रेम सागर में डुबो के, स्वयं प्रेममार्ग मथुरा लौट गए।

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयौ हो निरगुण उपदेसन, भयौ सगुन को चौरौ।।
जो मैं ज्ञान गहयौ गीत को, तुमहिं न परस्यौं नेरौ।
अति अज्ञान कछु कहत न आवै, दूत भयौ हिर कैरौ।।
निज जन जानि-मानि जतननि तुम, कीन्हो नेह घनेरौ।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी, बोरि जग को बेरौ ।।11।।

इस प्रकार सूरदास जी ने भ्रमरगीत के माध्यम से भक्ति एवं प्रेम को योग एवं ब्रह्म ज्ञान से श्रेष्ठ बताया और गोपियों एवं उद्धव का पूर्ण वार्तालाप भ्रमरगीत के माध्यम से दर्शाया है। जिसमें विरह, प्रेम, ज्ञान एवं अपनेपन का पूरा सागर समाहित किया हुआ है।

निशा चोरेटिया
प्रबंधक (राभा)
अं.का., मेरठ

"मैं कविता को जीवन तक पहुँचने की सबसे सीधी और सबसे छोटी राह मानता हूँ। यह मस्तिष्क नहीं हृदय की राह है।"
-रामधारी सिंह दिनकर (अर्द्धनारीश्वर)

मानव संसाधन की उपयोगिता एवं विकास

मानव संसाधन एक वृहद् अवधारणा है। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास का महत्वपूर्ण उपकरण है। हालाँकि मानव संसाधन कृषि युग शुरू होने के साथ-साथ ही व्यवसाय एवं संगठनों का हिस्सा रहा है। सन् 1900 के आरंभ में ही उत्पादन क्षमता बढ़ाने के तरीके की ओर ध्यान देने से मानव संसाधन की आधुनिक अवधारणा शुरू हुई मानव संसाधन के संदर्भ में कर्मचारियों को बदले जाने वाले कलपुर्जों के बजाय उनके मनोविज्ञान तथा कंपनी के साथ सामंजस्य की कसौटियों पर परखा जाना चाहिए।

- मानव संसाधन का कुशल प्रबंधन किये जाने पर मानव संसाधन अपने इनपुट से अधिक आउटपुट दे सकता है। अन्य संसाधन समय बीतने के साथ अवमूल्यन की ओर अग्रसर हो जाते हैं जबकि मानव संसाधन समय बीतने के साथ और कुशल एवं अनुभवी होकर मूल्यवान हो जाता है।
- मानव संसाधन किसी भी संगठन की अत्यधिक महत्वपूर्ण संपत्ति है। किसी भी संगठन की क्षमता एवं प्रभाविकता उसके मानव संसाधन के प्रभावी उपयोग पर निर्भर है।
- मानव संसाधन बहुआयामी प्रकृति का होता है। किसी देश के संदर्भ में मानव संसाधन उसकी जनसंख्या में पाई जाने वाली योग्यता क्षमता, कौशल एवं ज्ञान है जो उस देश के लिए मानव पूँजी का निर्माण करता है।

मानव संसाधन प्रबंधन वस्तुत: प्रबंधन का ही एक अंग है जिसके अंतर्गत देश या संस्था के समुचित विकास सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कोई देश या संस्था अपने मानव संसाधन का उपयोग करना चाहता है। मानव संसाधन का मुख्य उद्देश्य है बेहतर परिणाम प्राप्त करना और उसके लिए मानव संसाधन के बेहतर प्रयोग की व्यवस्था करना। मानव संसाधन प्रबंधन एक समन्वित श्रृंखला है जो कर्मचारी और नियोक्ता के संबंध को संचालित करती है। उसकी गुणवत्ता संस्था व कर्मचारियों की उद्देश्यपूर्ति में सहायक होती है। उद्यमिता के क्षेत्र में मानव संसाधन की गरिमा अत्यंत ही महत्वपूर्ण है।

मानव संसाधन प्रबंधन अपने आप को दैनिक कार्यों तक ही सीमित नहीं रखता है बल्कि यह अपने कारोबारी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक ऐसी सकारात्मक कार्य संस्कृति बनाने के लिए संकल्प है जिसमें कार्मिक प्रबंधन के सभी पहलुओं का समावेश हो। मानव संसाधन ही हमारी ताकत है और यह हमें ज्ञान, टेक्नोलॉजी की नई चुनौतियों का सामना करने एवं राष्ट्रीय / वैश्विक अर्थव्यवस्था को बदलते दौर के अनुरूप अपने को ढालने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मानव संसाधन ज्ञान, कौशल, रचनात्मकता, सजृनात्मक दृष्टिकोण, योग्यता और प्रतिभा के विकास और प्रबंधन के लिए विभिन्न मानव संसाधन नीतियों, प्रक्रियाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी डिजाइन और उसके बेहतर उपयोग के लिए उचित प्रबंधन का हर संभव प्रयास कर रहा है। बैंक का मानव संसाधन प्रबंधन, बैंक कर्मचारियों की अब तक की सर्वाधिक बदलती आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी कार्य नीतियां निरंतर तैयार कर रहा है, जिससे संगठन में सहभागितापूर्ण कार्य संस्कृति को बढ़ावा मिले और कार्यकुशलता भी बढ़े।

- मानव संसाधनों के इष्टतम उपयोग में सहयोग।
- अधिकतम उत्पादकता के लिए कैरियर में प्रगति तथा मानव संसाधन की भविष्यगत आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करना।
- संगठनात्मक उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक कर्मचारियों के कार्य निष्पादन एवं दक्षता, संभाव्यता एवं क्षमता का वस्तुनिष्ठ आकलन करने के साधन के रूप में कार्यनिष्पादन मूल्यांकन किया जाना है।
- प्रणालीबद्ध तरीके से सभी सेवा अभिलेखों का रखरखाव करना।

● सकारात्मक कार्य संस्कृति के बारे में स्टाफ को जागरूक कर सौहार्दपूर्ण औद्योगिक संबंध कायम रखना।

● मानव संसाधन विकास हेतु व्यापक कार्यनीति के भाग के रूप में प्रशिक्षण और विकास को प्रोत्साहित करना, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं :

मानव संसाधन के बेहतर उपयोग होने से आउटपुट में गुणात्मक वृद्धि होती है। आपसी तारतम्यता बनी रहती है। संस्था अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो पाती है। उसकी छवि अपने पीयर ग्रुप में बेहतर होती है। आपसी सौहार्दपूर्ण संबंध बरकरार हो पाता है। हमारा मानव संसाधन हमारी ताकत है। संस्था की चुनौती को एक अवसर के रूप में परिणत करने में सार्थक साबित होता है। आज मानव संसाधन विकास का अर्थ व्यापक होता जा रहा है। मानव संसाधन विकास ऐसी पद्धति है जिसमें सभी वर्गों के तथा सभी स्तरों पर काम करने वाले व्यक्तियों के लिए कार्य उपलब्ध करने तथा उनकी शक्ति का पूर्ण उपयोग संभव करने की दृष्टि से योजनाबद्ध कार्रवाई की जाती है। मानव संसाधन विकास एक नवीन अवधारणा है जिसका प्रयोग व्यष्टि (Micro) एवं समष्टि (Macro) दो स्तरों पर किया जाता है जहां प्रथम स्तर पर इसके प्रयोग से अभिप्राय एक संगठन में कार्मिकों एवं प्रबंधकों के विकास से है जिससे गुणवत्ता एवं उत्पादकता दोनों में वृद्धि हो। वहाँ द्वितीय स्तर पर इसका अर्थ एक राष्ट्र की सम्पूर्ण जनसंख्या का चहुँमुखी विकास करना है।

मानव संसाधन विकास के महत्व को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत रेखांकित किया जा सकता है :

1. कार्मिकों को वर्तमान एवं परिवर्तित भविष्य में उत्तरदायित्व की अनिवार्यताओं एवं चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करता है।
2. कार्मिकों को संगठन एवं कार्य के सापेक्ष अनुपयुक्त एवं अवांछित होने से बचाता है।
3. कार्मिकों में रचनात्मक योग्यता एवं प्रतिभा विकसित करता है।
4. कार्मिकों को उच्च स्तर के कार्यों के लिए तैयार करता है।
5. नव नियुक्त कार्मिकों में मानव संसाधन विकास के लिए मूलभूत प्रतिभा एवं ज्ञान प्रदान करता है।
6. अगले उच्च पद के लिए कार्मिकों में क्षमता विकसित करता है।
7. सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन में सहायता प्रदान करता है।
8. व्यक्तिगत एवं सामूहिक मनोबल में विकास करना तथा उत्तरदायित्व की भावना, सहयोगी दृष्टिकोण एवं अच्छे पारस्परिक संबंध स्थापित करना है।
9. यह कार्मिकों के एकीकृत विकास में सहायक है।
10. यह कार्मिकों की अपनी कमियों एवं शक्तियों को पहचानने में सहायक होता है जिससे कार्मिक एवं संगठन दोनों के निष्पादन में सुधार होता है।

कहा जा सकता है कि, आज के प्रतियोगिता एवं चुनौतीपूर्ण समय में कोई भी संगठन अपने कार्मिकों के विकास के बिना अपने विकास एवं अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता। वस्तुत:

1. व्यक्ति के कल्याण के बिना समाज का विकास असंभव है।
2. यद्यपि बढ़ती जनसंख्या मानव विकास में बाधक है किन्तु यह भी सत्य है कि मानव विकास के बिना जनसंख्या नियंत्रण संभव नहीं है।
3. किसी भी समाज एवं राष्ट्र की एकता, समरसता तथा प्रगति प्रमुख रूप से मानव विकास पर निर्भर करती है।

संगठनात्मक स्तर पर मानव संसाधन विकास से तात्पर्य निजी या सरकारी विभागों, उपक्रमों या कार्यालयों में कार्यरत कार्मिकों के विकास से है जिसे स्थूल रूप से "कार्मिक प्रशासन" का पर्याय भी समझा जाता है। स्पष्ट है संगठन में भर्ती, पद वर्गीकरण, प्रशिक्षण, वेतन, भत्ते, पदोन्नति, पदस्थापन, स्थानान्तरण, पुरस्कार, वृत्तिका विकास निष्पादन मूल्यांकन, आचार संहिता, अनुशासनात्मक कार्यवाही, आनुषंगिक लाभ, सेवानिवृत्ति तथा अन्य कार्मिक कल्याण के प्रयास, इसमें सम्मिलित हैं।

मानव संसाधन विकास से तात्पर्य उस प्रक्रिया तथा अवधारणा से है जो मनुष्य को एक संसाधन मानते हुए इसके सम्पूर्ण पक्षों को उन्नत एवं परिवर्धित करने की ओर बल देती है ताकि कार्य-परिणामों का स्तर भी

उच्च बन सके। मानव संसाधन विकास के सिद्धांतों को निम्नवत बिन्दुओं के अंतर्गत रेखांकित किया जा सकता है :

1. मानव संसाधन एक सम्पूर्ण मानव है अर्थात् उसके आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कई पहलू एवं पक्ष हैं जो उसके मूल्यों एवं मनोभावों, विचारों, विश्वासों, दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं जिनके साथ ही वह कार्मिक संगठन में प्रवेश करता है।
2. मानव संसाधन विकास प्रोग्रामों के द्वारा मानव संसाधन की क्षमताओं में विकास किया जा सकता है।
3. कार्मिकों की पृष्ठभूमि, आकांक्षाएं एवं मूल्यों में परस्पर भिन्नता पाई जाती है अतः हर कार्मिक अलग तरह से प्रबंधित होना चाहिए तथा उनके लिए अलग सिद्धान्त एवं उपागम अपनाए जाने चाहिए।
4. समय के साथ मानव संसाधन की महत्ता में वृद्धि हुई है क्योंकि अन्य संसाधनों से भिन्न यह एक ऐसा संसाधन है जो निरन्तर सीखने एवं अपना विकास करने की प्रक्रिया में लिप्त है।
5. कार्मिक किसी संगठन की अनमोल पूंजी होते हैं। अतः इस संसाधन का सम्मान होना चाहिए।
6. कोई भी कार्य हो वहां नेतृत्व का विकास बने रहना अनिवार्य है।
7. कार्मिक एवं संगठन के संबंधों का संचालन पूर्ण सच्चाई एवं निष्ठापूर्वक होना चाहिए।
8. किसी भी संगठन को अपने ग्राहकों को दोषरहित वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध करानी चाहिए अर्थात् ग्राहक संतुष्टि पर ध्यान देना चाहिए वह तब होगा जब संगठन में कार्मिक संतुष्ट होंगे। कार्मिकों को केवल मानव संसाधन विकास गतिविधियों द्वारा संतुष्ट किया जा सकता है।

बैंकों को नियमित रूप से अपने कर्मचारियों के कौशल स्तरों को समृद्ध करने की जरूरत है ताकि वे सक्षम और प्रतिस्पर्धा में बने रहें और नए अवसरों का लाभ उठा सकें। सभी वर्गों के बैंकिंग कर्मचारियों को उनके अपने कार्यों को और अधिक निपुणता से करने में दक्ष बनाने के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। प्रशिक्षण पहल में यह सुनिश्चित किया जाना है कि बैंकों में उपलब्ध सुयोग्य कर्मचारियों का समूह हमेशा तेजी से बदलती बैंकिंग के तौर-तरीकों के साथ कदमताल कर सके। वास्तव में, इन चुनौतियों में बैंकों के लिए संभावनाएं भी मौजूद हैं जिससे वे अपने संगठनात्मक प्रोफाइल को नया स्वरूप प्रदान कर सकते हैं और भविष्य की आवश्यकताओं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त एचआर प्रणालियाँ तथा पद्धतियां तैयार कर सकते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि बैंक किसी भी अर्थव्यवस्था की जीवन रेखा है तथा आर्थिक विकास को सक्रिय बनाने और उसे कायम रखने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाते हैं। बैंकिंग परिप्रेक्ष्य में मानव संसाधन का काफी महत्व है और इसका समुचित विकास, प्रशिक्षण व प्रबंधन अपेक्षित रहता है। साथ ही संस्था के प्रति मानव संसाधन के कौशल, दक्षता व ज्ञान का संपूर्ण योगदान भी आवश्यक होता है ताकि संस्था का उत्तरोत्तर विकास हो व प्रासंगिकता बनी रहे। अनुभवी व्यक्ति के होने पर कार्य क्षमता बढ़ती है, कनिष्ठ स्तरों पर दक्षता में वृद्धि हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। यही कार्यक्षमता, दक्षता संस्था के त्वरित निर्णय को प्रभावशाली व कारगर बनाती है।

अमन कुमार झा
अंचल प्रबंधक
अं.का., देवघर

फणीश्वर नाथ 'रेणु'

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फारविसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। रेणु का मूल नाम फणीश्वरनाथ मंडल था। उनका नाम रेणु कैसे हुआ, इसके बारे में उन्होने स्वयं लिखा है कि "रेणु" नाम श्री कृष्ण प्रसाद कोईराला का दिया हुआ है। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई थी। प्रारंभिक शिक्षा फारविसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद उन्होंने नेपाल में विराटनगर के आदर्श विश्वविद्यालय से कोईराला परिवार के साथ रहते हुए मैट्रिक पूर्ण की। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में इन्टरमीडिएट की, जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े।

बाद में 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ छात्र संघर्ष समिति में सक्रिय रूप से भाग लिया और जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति में अहम भूमिका निभाई 1952-53 के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे जिसके बाद लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ। उन्होंने हिंदी में आंचलिक कथा की नींव रखी। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, एक समकालीन कवि, उनके परम मित्र थे। इनकी कई रचनाओं में कटिहार के रेलवे स्टेशन का उल्लेख मिलता है।

साहित्यिक विशेषताएँ :- रेणु की कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक जीवन की हर धुन, हर गंध, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता, और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा-शैली में एक जादुई सा असर है जो पाठकों को अपने साथ-साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अद्भुत किस्सागो थे और उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुना रहा हो। उन्होंने अपने कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है।

इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाता है और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिक पदों का बहुत ही प्रयोग किया है।

हिंदी साहित्य के आंचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार रेणु जी के बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास मैला आंचल के प्रकाशन ने हिंदी उपन्यासों को एक नई दिशा दी तथा हिंदी जगत में आंचलिक उपन्यासों पर विमर्श प्रारंभ हुआ। आंचलिकता की इस अवधारणा ने उपन्यासों एवं कथा साहित्य में अंचल को ही नायक बना डाला।

रेणु जी की रचनाओं में अंचल कच्चे और अनगढ़ रूप में ही आता है। इसलिए उनका यह अंचल एक तरफ शस्य श्यामल है तो दूसरी तरफ धूल भरा और मैला भी है। स्वतंत्र भारत में उनकी रचनाएं विकास को शहर केन्द्रित बनाने वालों का ध्यान अंचल की समस्याओं की ओर खींचती है। अपनी गहरी मानवीय संवेदनाओं के कारण उन्होंने अभावग्रस्त जनता की बेबसी और पीड़ा को गहराई से रेखांकित किया है। उनकी इस संवेदनशीलता के साथ यह विश्वास भी जुड़ा हुआ है कि आज के त्रस्त मनुष्य में अपने जीवन की दशा को बदलने की शक्ति भी है।

सम्मान एवं पुरस्कार :- अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' के लिए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

रेणु जी की कृतियां :-

उपन्यास :- 'मैला आंचल' (1954), 'परती : परिकथा' (1957), 'दीर्घतपा' (1962), 'जुलूस' (1975), 'कितने चौराहे' (1966), कलंक मुक्ति' (1972) एवं 'पलटू बाबू रोड' (मरणोपरांत 1979 में प्रकाशित)

कथासंग्रह :- ठुमरी (1959), एक आदिम रात्रि की महक (1967), अग्निखोर (1973), एक श्रावणी दोपहर की धूप (1984), अच्छे आदमी (1986)

रिपोर्ताज :- ऋणजल धनजल, नेपाली क्रांतिकथा, वनतुलसी की गंध, श्रुत अश्रुत पूर्व

प्रसिद्ध कहानियाँ :- मारे गए गुलफाम (तीसरी कसम), एक आदिम रात्रि की महक, लाल पान की बेगम, पंचलाइट, तबे एकला चलो रे, ठेस, संवदिया

उनकी ही प्रसिद्ध कहानी पर आधारित 'तीसरी कसम' नाम से राजकपूर एवं वहीदा रहमान की मुख्य भूमिकाओं में एक फिल्म का निर्माण किया गया था, जिसे प्रसिद्ध निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया था। यह फिल्म हिन्दी सिनेमा में मील का पत्थर मानी जाती है।

मैला आंचल :- 'मैला आंचल' मिथिला में पूर्णिया जिले के एक छोटे से गांव मेरीगंज पर केंद्रित है। नील की खेती करवाने वाले किसी अंग्रेज की पत्नी के नाम पर हुआ यह नामकरण अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी जनमानस में स्वीकृत है। यह पिछड़ा हुआ गांव है। इसमें तीन दल प्रमुख है: कायस्थ, राजपूत और यादव। गांव में अशिक्षा का बोलबाला है। रेणु मेरीगंज के माध्यम से संपूर्ण भारतीय ग्राम समाज की कहानी कहते हैं। डॉ. प्रशांत गांव के मलेरिया सेंटर में डॉक्टर बनकर आता है। कायस्थ टोली के मुखिया तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमला से उसका संपर्क रागतत्व में बदल जाता है उपन्यास में इसी प्रकार की कई और कथाएं हैं, बलदेव और लक्ष्मी की कथा, महंत रामदास और रामपियरिया, कालीचरण और बावनदास आदि के कथा प्रसंग को जोड़कर लेखक गांव और इसके माध्यम से सम्पूर्ण देश की स्थिति का आकलन करना चाहते हैं। देश की स्वाधीनता के बाद, नवनिर्माण और योजनाओं के दौर में मेरीगंज सबसे अछूता नहीं रहता, मलेरिया का उन्मूलन का कार्यक्रम जैसे गांव के पिछड़े और दीन-हीन समाज के लिए एक बहुत बड़ा उत्साह है।

मैला आंचल में अंचल की सांस्कृतिक और लोकतांत्रिक विशेषताओं पर लेखक ने खूब ध्यान दिया है। इस उपन्यास के पात्र अपने इस अंचल से बहुत आत्मीय भाव से जुड़े हुए हैं। एक गांव के रूप में मेरीगंज को समूचे राष्ट्र के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है।

भाषा और शिल्प के स्तर पर मैला आंचल ग्राम समाज के छोटे-छोटे चित्रात्मक और लोक तत्व का बोध कराता है। इसके अलावा शब्दों को तोड़ मरोड़ कर उन्हें एक खास स्थानीय रंग में ढालने का आग्रह आदि इसको एक विभिन्न प्रकार की रचना के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

परती परिकथा :- इसमें पारनपुर गांव कथा के केंद्र में है। गांव में जातियों और उपजातियों की स्थिति वैसी ही है। विभिन्न सरकारी योजनाओं, ग्राम व समाज सुधार और विकास योजनाएं, जमींदारी उन्मूलन, लैंड सर्वे ऑपरेशन, कोसी योजना आदि के प्रति लोगों में अपार उत्साह है। उपन्यास का नायक जितेंद्र जित्तन अपने निजी अनुभव से राजनीति की जिस कटुता और दुरभि संधि के प्रति वितृष्णा पाल लेता है। लेखक ने उसे ही एक आदर्श स्थिति मानकर प्रस्तुत किया है।

जुलूस :- जुलूस उपन्यास पूर्वी बंगाल की एक विस्थापित युवती पवित्रा को केंद्र में रखकर चलता है। रेणु विभिन्न विशेषताओं एवं सामाजिक व्यवहार वाले मनुष्यों का एक चित्र सामाजिक जुलूस के रूप में यहां प्रस्तुत करते हैं। लेकिन आंचलिकता के प्रति उनमें कोई उत्साह यहां दिखाई नहीं देता। इस उपन्यास को पढ़कर बिहार की और बिहार के माध्यम से समूचे देश की राजनीतिक विकृतियों का कुछ पूर्वाभास अवश्य पाया जा सकता है।

रेणु जी सरकारी दमन और शोषण के विरूद्ध ग्रामीण जनता के साथ प्रदर्शन करते हुए जेल भी गए। रेणु ने आपातकाल का विरोध करते हुए अपना पद्मश्री का सम्मान भी लौटा दिया था। इसी समय रेणु ने पटना में लोकतंत्री रक्षी साहित्य मंच की स्थापना की। इस समय तक रेणु को पेप्टिक अल्सर की गंभीर बीमारी हो गयी थी। लेकिन इस बीमारी के बाद भी रेणु ने 1977 ई. में नवगठित जनता पार्टी के लिए चुनाव में काफी काम किया था। 11 अपैल, 1977 ई. को रेणु उसी पैप्टिक अल्सर की बीमारी के कारण चल बसे।

सुधांशु कुमार
प्रबंधक
मानव संसाधन विभाग,
कॉर्पोरेट कार्यालय, चेन्नै

मन्नू भंडारी की जीवन यात्रा

मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले के छोटे से एक गाँव भानपुरा में 03 अप्रैल 1931 को जन्मीं मन्नू भंडारी ने आगे चलकर साहित्य जगत में एक बड़ा नाम कमाया। मन्नू जी के बचपन का नाम महेंद्र कुमारी था। उस वक्त किसे पता था कि ये महेंद्र कुमारी आगे चलकर हिंदी साहित्य की दुनिया में मन्नू भंडारी के नाम से ख्याति प्राप्त करेंगी। परन्तु, नियति शायद उनके इस शानदार साहित्यिक सफर का बरसों से इंतज़ार कर रही थी। मन्नू जी का जीवन-रथ कई पड़ावों से गुज़रा। मंदसौर की छोटी सी दुनिया से बाहर निकलने से लेकर दिल्ली के मिरांडा हाउस में वर्षों तक अध्यापिका रहने के बाद, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन प्रेमचंद सृजनपीठ की अध्यक्षा के नेतृत्व तक, मन्नू जी ने अपने जीवन के सभी किरदारों को बहुत ही शिद्दत से निभाया। उसमें से जिस किरदार ने दुनिया में अपनी सबसे गहरी छाप छोड़ी, वह था उनका लेखिका के रूप में साहित्य जगत में प्रवेश करना। मन्नू जी अपने बारे में लिखती हैं -

"मैंने अपनी पीड़ा किसी को नहीं बताई क्योंकि मेरा मानना है कि व्यक्ति में इतनी ताकत हमेशा होनी चाहिए कि अपने दुख, अपने संघर्षों से अकेले जूझ सके।"

उनका यह कथन, उनकी हर परिस्थिति में अकेले जूझने की विशेषता को तो दर्शाता ही है परंतु इस बात की ओर भी संकेत करता है कि उनके इस 'अंदर ही दफन' कर लेने वाले व्यक्तित्व की वजह से दुनिया उनके कई जीवन-संघर्षों से अनभिज्ञ रह गई हो।

उनकी कहानी 'यही सच है' में वह नायिका को अपने अतीत एवं आज के प्रेमी में से किसी एक को चुनने के ऊहापोह को बखूबी दिखाती हैं। यह उस समय के भारतीय समाज की मान्यताओं से पूर्णतया इतर था। इस कहानी पर आधारित फिल्म रजनीगंधा जिसमें, अमोल पालेकर, विद्या सिन्हा और दिनेश ठाकुर मुख्य भूमिका में दिखे, को वर्ष 1975 में फिल्मफेयर पुरस्कार प्रदान किया गया। मन्नू जी का फिल्म जगत में भी एक बड़ा योगदान रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में केट चोपिन ने अमेरिका में जिस प्रकार महिलावाद को अपने लेखन का आधार बनाया। सन् 1899 में प्रकाशित **'दी अवेकनिंग'** उनकी इसी महिलावादी विचारधारा का सबसे लोकप्रिय उपन्यास रहा जिसने समाज में यह संदेश दिया कि स्त्री हर प्रकार के बंधनों से ऊपर, खुद की खोज में समाज के सारे कटाक्षों को नजरअंदाज करके आगे बढ़ चली है। उसने अपने सारे अरमानों की पोटली को खोलकर रख दिया है। वह अब एक आजाद चिड़िया की तरह आकाश की ऊँचाइयों को चूमना चाहती है। उसने अब अपने पिंजरे से बाहर कदम रख दिया है। अब उसे कोई चीज नहीं रोक सकती। बहुत ही बेबाकी से उन्होंने समाज में महिलावाद की नींव रखी।

मन्नू जी भी कुछ उसी प्रकार से आजाद भारत में महिलावाद की नींव रखने में काफी बुलंद दिखीं। उनकी रचनाएं उस समय के भारतीय समाज, जहां स्त्री घर की चौखट से बाहर निकलने में भी संकोच करती थी, वैसे पुरुष प्रधान समाज को यह बताने का साहस किया कि एक स्त्री की खुद की इच्छाएं हैं, खुद की ख्वाहिशें हैं। वह खुद से प्रेमी चुन सकती है, वह स्वयं अपने निजी जीवन के निर्णय ले सकती है। वह अपना जीवन एक रोबोट की तरह नहीं, एक भावों से भरी स्त्री की तरह जी सकती है।

मन्नू जी आधुनिक समाज में आने वाले बदलावों को भली-भांति परखने में सक्षम रहीं। जैसे सत्तर के दशक

में प्रकाशित उनका उपन्यास आपका बंटी पर ध्यान दें, जिसे विवाह-विच्छेद की त्रासदी में पिस रहे एक बच्चे को केंद्र में रखकर लिखा गया जो कि एक नवीन विचार था, नवीन इस प्रकार कि ऐसे समाज जहां सात जन्मों तक साथ निभाने की कसमें खायी जाती हैं वहां जब कोई लेखिका विवाह-विच्छेद जैसे अमान्य विचारों को अपनी रचना का आधारबिंदु बना के साहित्य जगत में पाठकों के समक्ष एक उपन्यास के रूप में रखे तो वह काफी हद तक अकल्पनीय था।

मन्नू जी की ऐसी ही कई कृतियाँ हैं जो हमारे समाज में आज भी ऐसी प्रतीत होती हैं मानो किसी आज की पीढ़ी की लेखिका ने अतीत में जा कर इस समाज में आए बदलावों को कलम से उतार दिया हो। नीचे ऐसी ही कुछ कृतियों का उल्लेख है जो आपको अवश्य पढ़नी चाहिए -

कहानी-संग्रह :- एक प्लेट सैलाब, मैं हार गई, तीन निगाहों की एक तस्वीर, त्रिशंकु, श्रेष्ठ कहानियाँ, आँखों देखा झूठ

उपन्यास :- स्वामी, एक इंच मुस्कान और कलवा

पटकथाएँ :- रजनी, निर्मला, स्वामी, दर्पण।

नाटक :- बिना दीवारों का घर।

नि:संदेह, मन्नू जी ने समाज में स्त्री को उसका खोया आत्म-सम्मान दिलाने एवं उसके अधिकारों के लिए पूरी लड़ाई लड़ी। उनकी रचनाएं आगे भी पीढ़ियों को समाज में समय के साथ आए बदलावों को स्वीकार करने का साहस देंगी। उनका साहित्य समाज में समान-अधिकार की आवाज को और बुलंद करेगा। उनका व्यक्तित्व समाज में महिला सशक्तिकरण की विचारधारा को और प्रबल करेगा। 15 नवम्बर 2021 को मन्नू जी का 90 वर्ष की उम्र में देहांत हो गया। इस घटना से साहित्य जगत को एक बड़ा नुकसान हुआ है। मन्नू जी आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनका साहित्य हमारे बीच आज भी है और हमेशा रहेगा।

गौरव मिश्रा
प्रबंधक (राभा)
अं.का., डिब्रूगढ़

पैसा

जीवन सुरक्षित करने का आधार है पैसा,
सारे जग में दूजा, ना कोई पैसे जैसा।
पैसा है तो सब कुछ है, जिंदगी में सारे सुख हैं,
पैसों का है यही कमाल, कर जाता जीवन खुशहाल।
खेल इस दुनिया में, सिर्फ पैसों का चलता है,
अच्छे-अच्छे ईमानदारों की नीयत, पैसा ही बदलता है।
पैसा ही दुख-दर्द है, पैसा ही मोह माया,
संसार में देखो कैसा, पैसों का जादू छाया।
पैसा भूख है, प्यास है, सुख और चैन की तलाश है,
हर व्यक्ति के मन में, पैसा पाने की ही आस है।
समाज में पैसे वालों का, मान अधिक होता है,
चाहे लाख हो उनमें कमी मगर, सम्मान अधिक होता है।
कहीं शगुन के रूप में आता है,
तो कहीं रिश्वत ये बन जाता है,
देता किसी को खुशियां सारी,
तो किसी की जिंदगी तबाह कर जाता है।
किसी से करवाता ये मजदूरी,
तो किसी की बन जाता है मजबूरी,
किसी के लिए हैं गमले का पौधा,
तो किसी के लिए हैं ऊंची खजूरी।
पैसा है तो शौक है, मौज है, ऐश और आराम है,
बिन पैसे जीना तो, मरने के समान है।।

कुलदीप मालवी
प्रबंधक
ऊंचेहरा शाखा, सतना

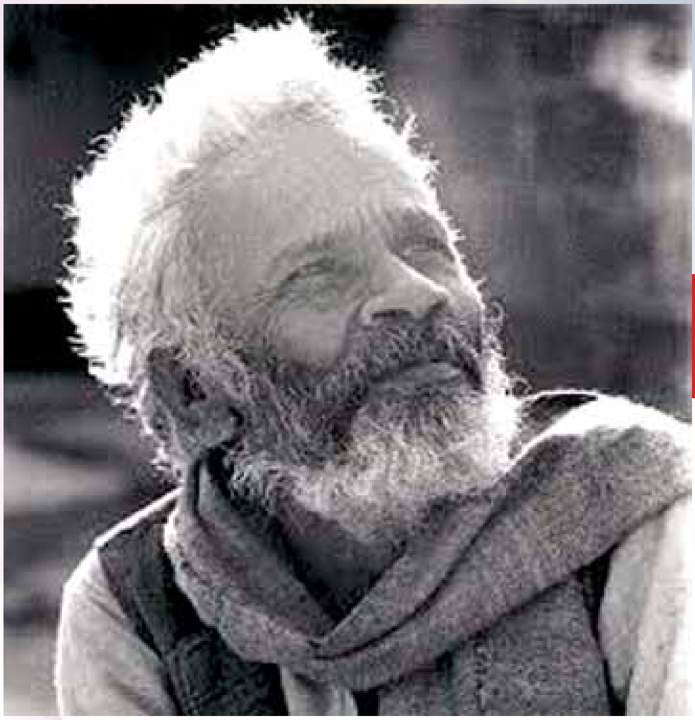

बाबा नागार्जुन

***मूल नाम:* बैद्यनाथ मिश्र**

***उपनाम:* नागार्जुन, यात्री, ढक्कन मिश्र, वैदेह, बाबा**

***जन्म:* दरभंगा (बिहार)**

जीवनकाल- 30 जून, 1911-05 नवंबर, 1998

उपाधि: *प्रगतिवाद का शलाका पुरुष, आधुनिक युग के कबीर, ग्राम्य कवि*

जनकवि बाबा नागार्जुन

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ,
जन कवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

हिंदी काव्य जगत में दो पंक्तियों की ऐसी साफ, स्पष्ट और मुखर अभिव्यक्ति रखनेवाले जनता के सेवक के तौर पर खुद को प्रस्तुत करने वाले विरले कवियों में से एक हैं बाबा नागर्जुन। संस्कृति का पंडित होने के बाद भी जनता की भाषा हिंदी में रचना की प्राथमिकता उनके जन-समर्पण का सर्वोच्च उदाहरण है। जनता के हित और भलाई के लिए वे शासक वर्ग या उसके जिम्मेदार पर सीधे व्यंग्य करते, उनके लिए जनता का दुख स्वयं का दुख था। इनकी कविताओं में कबीर की तल्खी, भारतेंदु की करुणा और निराला की विनोदवक्ता का विलक्षण सामंजस्य साफ-साफ दिखता है। समाज में बढ़ती आर्थिक खाई को पाटने के लिए सदैव सक्रिय रहने वाले कवि थे। सामाजिक विसंगति से उत्पन्न उनका आक्रोश व्यंग्य के रूप में मुखर होता है। बाबा अपने समय और परिवेश की समस्याओं से ही नहीं अपितु चिंताओं और संघर्षों से भी सीधे-सीधे जुड़े रहे हैं। वे लक्षणा और व्यंजना में काव्य न कर सीधे अभिधा में कविता करते थे जो पूँजीपति और शासकवर्ग को सीधी चुनौती देती और जन-जन तक उनका संदेश बिना किसी रोक टोक के पहुँच जाता। इतना ही नहीं बाबा नागर्जुन की कविताएँ आम पाठक के लिए सहज तथा विद्वान आलोचक को उलझन में डालनेवाली रही हैं। उनकी कविताओं में संवाद है, एक नहीं हजार-हजार। उनकी कविताओं का भावबोध अप्रतिम है जोकि सहज, प्रत्यक्ष और यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वे पीड़ित, दबे-हारे, बेचारे, त्रासद, दलित और समाज के मुख्य मार्ग से वंचित सभी असहायों के सहायक रहे हैं। उनके प्रति गहरी संवेदनशीलता और सहानुभूति का प्रतिबिंब हैं जो न दिखावटी है और न ही खोखली, यह केवल और केवल हकीकत है। उनकी रचनाएँ एक सच्चे कवि की अभिव्यक्ति हैं। बाबा नागार्जुन काव्य-सृजन तक सीमित नहीं हैं बल्कि उसे अपने जीवन में जीते भी हैं। इसलिए उनके काव्य में जनता का भाव प्रकट होता है और उन्हें 'जनकवि' सिद्ध करता है।

हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित कवियों में बाबा नागार्जुन का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। वे हिंदी के प्रख्यात प्रगतिशील कवि और कथाकार हैं। हिंद मैथिली, बांग्ला संस्कृति में उन्होंने कई कविताएँ लिखी वे संभवत: ऐसे अकेले कवि हैं जिन्होंने चार भाषाओं में कविताएं लिखीं जिसमें वे मैथिली में यात्री नाम से कविता लिखते थे। उनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। श्रीलंका के बौद्ध मठ में पाली सीखकर बौध शिक्षा ग्रहण कर नागार्जुन नाम से विख्यात हुए। बाबा नागार्जुन एक संवेदनशील कवि हैं। उनकी संवेदना वर्षा के समय में रात्री के अंधकार के कारण गरीब की चीत्कार, कवि के हृदय को झकझोर देती है-

"सुना मैंने हाल ही, उस गरीब के चीत्कार
साँप के जबड़ों में फँसा था वो, कर रहा था, चीत्कार निरंतर।"

बाबा नागार्जुन मस्तमौला, घुमक्कड़, फक्कड़ स्वभाव के थे। यायावर स्वभाव ही था कि वे कहीं एक जगह नहीं ठहरे जिसके कारण उनमें भाषा संबंधी विविधता भी दिखती है। वे संस्कृति, मैथिली, पालि, प्राकृत, सिंहली और तिब्बती कई भाषाओं के जानकार थे और प्रकृति प्रेमी भी। जब वे अपनी मातृभूमि को याद करते हैं तो वहाँ की प्राकृतिक विशेषताएँ उनकी कविताओं में साफ झलकने लगती है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकतर समय पर्वतीय प्रदेश में बिताया है। वे सिंधु नदी की कलकल और छल-छल की ध्वनि सुनकर गदगद हो जाते हैं :

'है सिन्धु देख तब अमियधार, गदगद होता हूँ बार-बार
तुम आए कल कल छल छल कर।।'

प्रकृति मानवीय भावनाओं की पृष्ठभूमि का आधार स्तंभ है। बाबा नागार्जुन का यात्री मन सदा उसमें रमता एवं प्रवाहित होता रहा है। प्रकृति से उनका गहरा जुड़ाव इन पंक्तियों में दिखता है-

'मैंने तो भीषण जाड़ों में, नभ-चुम्बी कैलाश शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से, गरज-गरज भिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है।'

अपनी पर्वतीय यात्रा के दौरान वे प्रकृति की अनुपम, मनोहर दृश्य को देखकर उसका वर्णन करने से खुद को रोक नहीं पाते हैं, हिमालय की यात्रा के दौरान वे कई झीलों एवं हंसों आदि को भी देखते हैं -

तुंग हिमालय के कंधों पर, छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में, समतल देसों से आ-आकर
पावस की ऊमस के आकुल, तिक्त-मधुर विष-तंतु
खोजते हंसों को तिरते देखा है।

वाचिक परंपरा के एक ऐसे कवि जो अपने जनों में यूँ घुल-मिल जाता है जहाँ से उसे अलग करके देखना मुश्किल है। एक अनभिजात्य, अकुलीन परंपरा का आधुनिक कवि जो संस्कृत का मर्मज्ञ है, परंतु जनभाषा में काव्य रचना करता है। ऐसी भाषा में जो साफ-साफ सबकी समझ में आए। घुमा-फिराकर, शब्दों को दरेरा देकर, गोल-मटोल भाषा में शब्द चातुरी करना जिसकी फितरत नहीं है। साफगोई और जन सरोकार के मुद्दों की मुखरता से तरफदारी उनकी विशेषता रही है।

अभाव, गरीबी में बिताए गए बचपन का अनुभव उनका निजी अनुभव है। सीधी बातें, स्पष्ट विचार, धारदार शब्द ये उन्होंने अपने जीवन से सीखा है। खेल-खेल में कविता लिखने से लेकर जन-मन के धरातल तक जाकर कविता लिखने लगे। उनकी आवाज हिंदी के उस प्रतिनिधि जनकवि की आवाज थी जो जनता के दुख की जड़ तक जाकर उसपर मरहम लगाती थी। वे गरीब, मजदूरों की अंतर्व्यथा को शब्दों का जामा पहनाते हुए 'अकाल और उसके बाद' कविता में लिखते हैं -

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास,
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

इस कविता की अगली चार पंक्ति अकाल के बाद के एक वास्तविक माहौल को चित्रित करती हैं -

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद,
धुआँ उठा घर-घर के अंदर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद,
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

वे अपने परिवार और समाज को याद करते हुए लिखते हैं-

याद आता है तुम्हारा सिंदूर तिलकित भाल,
कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए नहीं समाज?
कौन है वह एक जिसको नहीं पड़ता दूसरे से काज?

बाबा नागार्जुन का पूरा जीवन सामाजिक कुरीतियों, भ्रष्टाचारों को प्रहार करते हुए बीता था। अपनी 'नाहक ही डर गयी हुजूर' कविता में वे अधिकारियों के जीवन पर वयंग्य करते हैं। जनता की सुख-सुविधा हेतु जितनी योजनाएँ बनती हैं वह सब मात्र शासकीय कार्यवाहियाँ होती हैं जो पृष्ठों में अंकित रहती हैं। विकास की योजनाएँ पृष्ठों पर जन्म लेकर मृतप्राय हो जाती हैं और भूख से कुचले ग्रामवासी विवशता में अपनी माटी छोड़कर शहरों की ओर उन्मुख होते हैं। यथार्थ से परे समाचार-पत्र अपने कार्यों का संपादन करते हैं। कृषि की अभूतपूर्व उन्नति प्रसारित करते हैं और इस प्रकार देश की कृषि का विकास असेंबली की छत पर होता है-

कागज पर खेती होती कलम हुई हरफार,
छोड़ रहे हैं गाँव खेत मजदूरों के परिवार
"कृषि विकास की खबरें प्रतिदिन छाप रही अखबार,
असेम्बली की छत पर फसलों उगा रही सरकार"

बाबा नागार्जुन अपने समकालिक कवियों में से अलग अभिधा में कहने वाले एकमात्र कवि थे। उन्होंने लक्षणा या व्यंजना का सहारा न लिया जो कहा डंके की चोट पर कहा। वे राजनीति पर भी सीधा प्रहार करते हैं जिसको लेकर उनकी कई कविताएँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। सत्ता से सीधे सवाल करने की ऐसी हिम्मत केवल उनमें ही थी। वे कविता लिखते नहीं कविता जीते थे, कविता उनकी व्यक्तिगत कल्पना न थी बल्कि स्वयं से ऊपर पूरे समाज की सच्चाई थी। तत्काल सत्ता को चुनौती देने वाले बाबा नागार्जुन को जेल की यातनाएँ भी झेलनी पड़ी है पर वे रुके नहीं। स्वतंत्रता- प्राप्ति के बाद गांधी जी के सिद्धांतों की धज्जियां उड़ाने में जब राजनेताओं ने कोई कसर नहीं छोड़ी तो गांधी जी के तीनों बंदरों का उदाहरण लेकर ये पंक्तियाँ तीक्षण प्रहार करती हैं-

प्रेम पगे हैं, शहद सने हैं तीनों बंदर बापू के, गुरुओं के भी गुरू बने हैं तीनों बंदर बापू के सौवीं बरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के, बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के - कहते हैं शब्दों की धार तलवार की धार से ज्यादा तेज होती है। नागार्जुन एक फक्कड़ स्वभाव के कवि थे। एक सजग और संवेदनशील कवि थे जो इस सिद्धांत पर विचार करते थे कि जनता से लेकर जनता को ही सुपुर्द करना है। आजादी के बाद राजनीति और जनता के बीच बढ़ती खाई दिन प्रतिदिन गहरी होती जा रही थी। यही बात उन्हें अंदर तक कचोटती थी।

इन्होंने न केवल अपनी कविता बल्कि उपन्यास आदि अन्य रचनाओं के माध्यम से केवल एक समस्या ही नहीं बल्कि पूरे युग की समस्या का चित्रण किया है। उनकी कविताओं में जहाँ शोषक वर्ग को चुनौती है, सामाजिक असमानता, शोषण, अन्याय के खिलाफ आवाज है। आर्थिक अंतर को पाटने की खाई है, आम जन के लिए संवेदना है, प्रेम है तो कहीं क्रांति भी है। वहीं उनके उपन्यासों में नारेबाजी और जमींदारी शोषण के विरोध में किसान संगठन हैं, कुम्भीपाक उपन्यास में जहाँ नगरों-महानगरों एवं निम्न मध्यवर्गीय समाज में अनेक प्रकार के शोषण का शिकार होती स्त्रियों की नारकीय त्रासदी है। वहीं 'उग्रतारा' में विधवा उगनी की कथा के माध्यम से लेखक ने विधवा-पुनर्विवाह का नए कोण से अंकन किया है। वह उस रूढ़िवादी समाज को कटघरे में ला खड़ा करता है जो स्त्रियों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में अपनी कौशलता के बावजूद पुरानी रूढ़िगत परंपराओं से बंधे हैं। इसमें दहेज, बेमेल विवाह के साथ-साथ प्रेम संबंधों की वैधता-अवैधता जैसी समस्याओं के साथ स्त्री शिक्षा को महत्व दिया है।

उन्होंने कटहल के पक के गिरने से लेकर दंतुरित मुस्कान तक को अपनी कविताओं का विषय बनाया। गरीबी भूख कुशासन और अत्याचार के खिलाफ बाबा नागार्जुन की कविताएँ लगातार सवाल करती थीं। वे ऐसा किसी विचारधारा में बंधकर नहीं करते थे। अपनी विचारधारा पर वो कहते हैं- मेरे जीवन की एक ही विचारधारा है जनवाद, जनता का लाभ, गरीब के लिए दो जून की रोटी और तन ढकने के लिए कपड़ा। किसी भी विचारधारा से आए वही मेरी विचारधारा है मुझे जहाँ यह दिखी मैंने उसका समर्थन किया पर सभी ने मुझे उदास किया।

इनकी कविताओं में घुट-घुट कर मरना नहीं, मर-मरकर भी जीने का संकल्प, अदम्य जिजीविषा, संगठित होकर लड़ने, रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ने, चेतन होने का आह्वान गुंफित है। उनका कथ्य यथार्थ का वर्णन करके मात्र रुक नहीं जाता है अपितु विकल्प खोजता दिखाई देता है। ऐसे बाबा शारीरिक रूप से आज इस संसार में चाहे न हों, पर उनके विचार, उनकी संघर्ष भावना व आस्था उनकी रचनाओं के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक कायम रहेगी।

बाबा के ही शब्दों में-
मैं न अभी मरनेवाला हूँ....
मर-मरकर जीनेवाला हूँ....
संग तुम्हारे साथ तुम्हारे।।

राजा साव
सहायक प्रबंधक (राभा)
अं.का., अमृतसर

विशेष शख्सियतः काजी नजरुल इस्लाम

विद्रोही कवि के नाम से मशहूर काजी नजरुल इस्लाम को भारत और बांग्लादेश में बेहद सम्मान हासिल है। काजी नजरुल इस्लाम का जन्म 24 मई 1899 को पश्चिम बंगाल के आसनसोल के पास चुरुलिया गांव के एक मुस्लिम तालुकदार घराने में हुआ था। घर का माहौल पूरी तरह मजहबी था। उनके पिता काजी फकीर अहमद इमाम थे और एक मस्जिद की देखभाल करते थे। नजरुल बचपन में काफी खोए-खोए रहते थे। इसके चलते रिश्तेदार इन्हें 'दुक्खू मियां' पुकारने लगे।

नजरुल की शुरुआती तालीम मस्जिद द्वारा संचालित मदरसे में हुई जहां उन्होंने कुरान, हदीस और इस्लामी फलसफे को पढ़ा। जब वो सिर्फ 10 साल के थे, उनके पिता की मौत हो गई परिवार को सहयोग करने के लिए नजरुल पिता की जगह बतौर केयरटेकर मस्जिद में काम करने लगे। अजान देने का काम भी उनके जिम्मे था। इस काम को करने वाले को मुअज्जिन कहते हैं। इसके अलावा वो मदरसे के मास्टरों के काम भी करते थे। अपनी तालीम भी इस दौरान उन्होंने जारी रखी।

पुराणों का चस्का लगा तो शुरू हुए नाटक :- ईमान की तालीम के बाद बारी आई संगीत और साहित्य की। नजरुल चाचा फजले करीम की संगीत मंडली से जुड़ गए। ये मंडली पूरे बंगाल में घूमती और नाटक करती थी। नजरुल ने मंडली के लिए गाने लिखे। इस दौरान बांग्ला भाषा को लिखना सीखा। संस्कृत भी सीखी और उसके बाद कभी बांग्ला, तो कभी संस्कृत में पुराण पढ़ने लगे।

इसका असर उनकी रचनाओं में नजर आने लगा। उन्होंने कई नाटक लिखे जो हिंदू पौराणिक कथाओं पर आधारित थे। मसलन, 'शकुनी का वध', 'युधिष्ठिर का गीत', 'दाता कर्ण'।

मुअज्जिन फौजी बन कराची पहुंचे :- 1917 में नजरुल ने ब्रिटिश आर्मी जॉइन कर ली। 49वीं बंगाल रेजिमेंट में भर्ती हुई और कराची में तैनाती मिली। नाटक छोड़ वह फौज में क्यों गए? इस सवाल का जवाब उन्होंने ही लिखा- एक रोमांच की तलाश और दूसरी, उस वक्त की राजनीति में दिलचस्पी। कराची कैंट में नजरुल के पास ज्यादा काम नहीं था। अपनी बैरक में बैठ वह खूब पढ़ते। लेख और कविताएं लिखते। नजरुल ने रेजिमेंट के मौलवी से फारसी सीखी। फिर इस जबान के महान साहित्यकारों, रूमी और उमर खय्याम को पढ़ा। दो साल पढ़ने के बाद नजरुल ने अपना लिखा छपाने की सोची। साल 1919 में उनकी पहली गद्य की किताब आई शीर्षक था, 'एक आवारा की जिंदगी'। कुछ ही महीनों के बाद उनकी पहली कविता 'मुक्ति' भी छपी।

विद्रोही कवि नाम कैसे पड़ा :- 1922 में काजी की एक कविता ने उन्हें लोकप्रिय कर दिया वो भी इतना कि उनका नाम भी बदल गया। कविता का शीर्षक था

'विद्रोही', जो 'बिजली' नाम की मैगजीन में छपी थी। इसमें बागी तेवर थे। जल्द ही कविता अंग्रेजी राज का विरोध कर रहे क्रांतिकारियों का प्रेरक गीत बन गई इसका कई भाषाओं में अनुवाद भी हो गया। नतीजतन वो अंग्रेजों को खटकने लगे और जनता के बीच 'विद्रोही कवि' के नाम से मशहूर हो गए।

शादी :- नजरुल को प्रमिला से प्यार था। नजरुल मुसलमान, प्रमिला हिंदू। नजरुल मौलवियों के खानदान से, प्रमिला ब्रह्म समाज से। दोनों ने साथ होना तय किया, तो कट्टरपंथी परेशान हो गए। शादी में हजार अड़ंगे लगाए गए, मगर नजरुल और प्रमिला शादी करके ही माने। फिर नजरुल के पास कुछ मुस्लिम धर्मगुरु एक सलाह लेकर पहुंचे। चेतावनी भरे अंदाज में कहा कि निकाह तो ठीक है मगर अब प्रमिला को कलमा पढ़ मुसलमान बनना होगा। नजरुल ने उनकी बात एक बार सुनी और फिर बोले, सब के सब दफा हो जाओ यहां से। जाहिर है कि नजरुल मुसलमान रहे और प्रमिला हिंदू।

कृष्ण भजन भी लिखा :- नजरुल ने न सिर्फ इस्लामिक मान्यताओं को मूल में रखकर रचनाएं की, बल्कि भजन, कीर्तन और श्यामा संगीत भी रचा। दुर्गा माँ की भक्ति में गाया जाने वाला श्यामा संगीत समृद्ध करने में काजी नजरुल इस्लाम का बड़ा हाथ है। कृष्ण पर लिखे उनके भजन भी बहुत मशहूर हुए। पढ़िए उनके लिखे ऐसे ही एक भजन का हिंदी अनुवाद।

अगर तुम राधा होते श्याम
मेरी तरह बस आठों पहर तुम
रटते श्याम का नाम.....
वन-फूल की माला निराली
वन जाति नागन काली
कृष्ण प्रेम की भीख मांगने
आते लाख जनम
तुम, आते इस बृजधाम....
चुपके चुपके तुमरे हृदय में
बसता बंसीवाला
और, धीरे-धीरे उसकी धुन से
बढ़ती मन की ज्वाला
पनघट में नैन बिछाए तुम,
रहते आस लगाए
और, काले के संग प्रीत लगाकर
हो जाते बदनाम.....

आखिरी दिनों की बीमारी और कफन दफन की बात :- आजादी के बाद, उनके दिन बड़ी तकलीफों में बीते। उनकी तबियत अक्सर खराब रहने लगी। 1952 आते-आते तो ऐसे हालात हो गए कि उन्हें मेंटल हॉस्पिटल में भर्ती कराना पड़ा। उस वक्त उनका एक फैन क्लब हुआ करता था, जिसने उनके इलाज का बीड़ा उठाया। अगले बीस साल उन्होंने अपनी बीमारियों से जूझते हुए काटे। पत्नी का भी 1962 में देहांत हो गया।

1971 की दिसंबर में बांग्लादेश आजाद हो गया। 1972 में उन्हें बांग्लादेश ने अपना 'राष्ट्रकवि' घोषित किया। भारत सरकार की इजाजत से वो उन्हें ढाका बसाने के लिए ले गए। चार साल बाद ढाका में ही उनकी मौत हो गई ढाका यूनिवर्सिटी के कैम्पस में उन्हें दफन कर दिया गया। मस्जिद के साए में ही उनका सफर शुरू हुआ था, वहीं पे खत्म भी हुआ।

लेकिन कलमकारों का सफर कभी खत्म नहीं होता। उनका लिखा, उनके शरीर के मिट्टी होने के बाद भी बना रहता है और उसी में रचे-बसे वो बने रहते हैं।

चेतना शर्मा
प्रबंधक (राभा)
अं.का., आसनसोल

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।
-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कमलेश्वर

(6 जनवरी, 1932 – 27 जनवरी, 2007)

हिन्दी साहित्य में जब-जब संघर्षशीलता की बात होगी, रचनाशीलता में रचनाधर्मिता पर प्रतिबद्धता की चर्चा होगी, नारी की यथावत स्थिति व सृजनात्मकता को केंद्रित करना होगा, समसामयिक परिस्थिति की संजीदगी से संवेदनात्मक प्रस्तुति होगी, मजदूरों की भयावह स्थिति का केंद्रीकरण करना होगा, तब तक कमलेश्वर की प्रासंगिकता बरकरार रहेगी। इतना ही नहीं, जब भी जातीय चेतना पर परिचर्चा व संवाद होगा, तब नई कहानी के पुरोधा कहे जाने वाले कमलेश्वर के साहित्य को पढ़ा जाना न केवल एक सुखद अनुभव होगा बल्कि इससे ज्ञान चक्षु, विवेक चक्षु का विस्तार होगा, बोधगम्यता में सुगमता होगी, देश के वर्तमान परिदृश्य को समझने, जानने में सहूलियत होगी और परम्परागत दृष्टिकोण आधुनिकता की आँच से तपकर समसामयिक समस्याओं के साथ कंधे से कंधे मिलाकर खड़ा होने का जज्बा तैयार होगा, अनसुलझी गुत्थी को सुलझाने में मददगार साबित होगा। मेहनतकश मजदूरों की न केवल कथा कही या सुनी जाएगी अपितु उनके साथ खड़े रहने की ताकत मिलेगी। वस्तुतः कमलेश्वर का साहित्य समसामयिक सवालों को सुलझाने में सहायक साबित होगा। कमलेश्वर का साहित्य विचारधारा/चेतनशून्य समाज में चेतना की व्युत्पत्ति में योगदान देगा। असल में कमलेश्वर की रचनाएं उन्हें कालजयी साहित्यकार बनाती हैं।

कमलेश्वर कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तम्भ लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में अपनी अद्वितीय सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय देने वाले बीसवीं शती के सबसे सशक्त लेखकों में से एक हैं इन्होंने अनेक हिन्दी फिल्मों के लिए पटकथाएँ लिखीं तथा भारतीय दूरदर्शन श्रृंखलाओं के लिए दर्पण, चन्द्रकान्ता, बेताल पच्चीसी, विराट युग आदि लिखे। उन्होंने सम्पादन क्षेत्र में भी एक प्रतिमान स्थापित किया। 'विहान' जैसी पत्रिका का 1954 में संपादन आरंभ कर कमलेश्वर ने कई पत्रिकाओं का सफल संपादन किया जिनमें 'नई कहानियाँ' (1963-66), 'सारिका' (1967-78), 'कथायात्रा' (1978-79), 'गंगा' (1984-88) आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा संपादित अन्य पत्रिकाएँ हैं – 'इंगित' (1961-63), 'श्रीवर्षा' (1979-80)। हिंदी दैनिक 'दैनिक जागरण' (1990-92) के भी वे संपादक रहे हैं। सन 1980-82 तक कमलेश्वर दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक भी रहे। कमलेश्वर का नाम नई कहानी आंदोलन से जुड़े अगुआ कथाकारों में आता है। उनकी पहली कहानी 1948 में प्रकाशित हो चुकी थी परंतु 'राजा निरबंसिया' (1957) से वे रातों-रात एक बड़े कथाकार बन गए। कमलेश्वर ने तीन सौ से ऊपर कहानियाँ लिखी हैं। उनकी कहानियों में 'मांस का दरिया', 'नीली झील', 'तलाश', 'बयान', 'नागमणि', 'अपना एकांत', 'आसक्ति', 'जिंदा मुर्दे', 'जॉर्ज पंचम की नाक', 'मुर्दों की दुनिया', 'कसबे का आदमी' एवं 'स्मारक' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद के बाद हिंदी कहानी के सर्वाधिक समर्थ और सशक्त हस्ताक्षर कमलेश्वर हैं। वे कहानी के एक ऐसे सक्रिय कार्यकर्ता रहे जो कहानी को सामाजिक क्रांति, बदलाव का एक महत्वपूर्ण अस्त्र मानते थे।

बतौर कहानीकार कमलेश्वर की लोकप्रियता, कहानी को वैश्विक समस्याओं तक ले जाने का उत्कट बौद्धिक विमर्श, कहानी का विराट फलक और शैल्पिक समृद्धि, नई-नई कथा-युक्तियां और विशेषतः फैंटेसी का अद्भुत प्रयोग कर कथ्य की मारक-क्षमता में अभिवृद्धि, भाषा का टटका रचाव और इन सबके साथ कहानी को कहानी बनाए रखने का किस्सागोई का हुनर आदि कमलेश्वर को निश्चय ही प्रेमचंद के बाद के सर्वाधिक सशक्त कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। देश और दुनिया की विकरालतम समस्याओं को कहानी का कथ्य बनाते हुए उन्होंने जो बेजोड़ कहानियाँ-'तुम्हारा शरीर मुझे

पाप के लिए पुकारता है!' 'सफेद सड़क', 'इंतजार', 'दालचीनी के जंगल' आदि के रूप में दी हैं। उनको पढ़कर सहज ही प्रथम अनुभूति यह होती है कि क्या कहानी इस गहरे विमर्श और रूप (फॉर्म) में भी लिखी जा सकती है, या कहें कि हिंदी कहानी ने अपनी कुव्वत किस रूप में विकसित की है।

कमलेश्वर जितने बड़े कथाकार थे, उतने ही बड़े इंसान भी थे। आज के जमाने में लेखकों और साहित्यकारों में भी बड़े इंसान का मिलना बेहद मुश्किल होता जा रहा है। ऐसे समय में कमलेश्वर पूरी तरह से लोकतांत्रिक चेतना से संपन्न एक व्यक्ति और कथाकार के रूप में हमारे समय और समाज के रू-ब-रू थे। उनके भीतर विरोधी विचारों और व्यक्तियों से भी संवाद करने की तत्परता और क्षमता थी, जो उन्हें विशिष्टता प्रदान करती हैं। उनके भीतर समाज के उत्पीड़ित और पराधीन लोगों की यातना की अभिव्यक्ति की चिंता सर्वाधिक थी। इसलिए उनकी कहानियों में उस दौर में भी स्त्रियों की पराधीनता को अभिव्यक्त करने की चिंता दिखती है, जिस दौर में स्त्रियाँ हाशिए पर थीं और साहित्य में भी उनकी चिंता कम ही की जाती थी। दरअसल कमलेश्वर में आरंभिक दिनों से ही सामाजिक संवेदनशीलता थी। बाद के दिनों में उनके बौद्धिक कर्म का विस्तार हुआ और वे एक साहित्यकार के अलावा पत्रकार व मीडियाकर्मी के रूप में हमारे सामने आए। एक बौद्धिक पत्रकार के रूप में वे सारिका के संपादक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उस समय पत्रकारिता और साहित्य के सरोकार दूसरे किस्म के होते थे। लेकिन कमलेश्वर ने इनका विस्तार किया। सारिका के संपादक के रूप में उन्होंने उस पत्रिका के ऐसे विशेषांक निकाले, जो आज भी मील का पत्थर माने जाते हैं। उदाहरण के रूप में दलित विमर्श पर निकाले गए उनके विशेषांक याद किए जाते हैं। हिंदी साहित्य में दलित चर्चा शुरू होने से काफी पहले उन्होंने इस पत्रिका की कहानियों के माध्यम से और कहानियों से इतर विमर्श आयोजित करके भी दलित विमर्श को चर्चा का विषय बनाया। संभवत: बंबई में रहने और मराठी साहित्यकारों के लंबे सान्निध्य ने उन्हें इसके लिए प्रेरित किया, लेकिन हाशिए पर के समूहों के प्रति उनकी अपनी दृष्टि भी काफी प्रखर थी, इसलिए उन्होंने इन विमर्शों को आगे बढ़ाया।

कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में सामान्य मनुष्य के दुख-दर्द को, उसकी आकांक्षा और वंचना को, उसके अभाव और संघर्ष को, उसकी विवशता के साथ उसकी अदम्य जिजीविषा को भी बड़ी सफलता से अंकित किया है। सामाजिक एवं पारिवारिक संपृक्ति और नये सवालों और सरोकारों से जुड़ी कमलेश्वर की कहानियाँ उनके पाठकों से नजदीकी रिश्ता इसलिए बना लेती हैं कि वे इनमें अपनी यातना, लड़ाई, कुण्ठा और सपनों की मिसमार होती तस्वीरें देखते हैं। अपनी त्रासदी, पराजय और राख होती आग से पुती उनकी आकांक्षाओं की उँगलियाँ फिर किसी आँच को टोहने-टटोलने लगती हैं। बीसवीं सदी के अंतिम पड़ाव में प्रकाशित कमलेश्वर की सर्वाधिक चर्चित औपन्यासिक कृति कितने पाकिस्तान केवल रोचक और पठनीय ही नहीं अपितु लोमहर्षक और विचारोत्तेजक महागाथा है। यह कृति तमाम ऐतिहासिक उथल-पुथल, साहित्यिक आंदोलनों, सांस्कृतिक टकरावों और धार्मिक उन्माद से उत्पन्न युद्धों के साथ मानव के उत्कर्ष व अपकर्ष, हर्ष व विषाद, उत्थान व पतन का ऐतिहासिक और निर्णायक दस्तावेज है।

आँधी, अमानुष और मौसम जैसी कलात्मक फिल्मों से लेकर व्यावसायिक फिल्मों तक कमलेश्वर ने कुल 99 फिल्मों का लेखन किया। वे एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दायित्व के रूप में इस व्यावसायिक कला माध्यम से भी गहरे रूप से जुड़े रहे और इसे एक नया वैचारिक धरातल देने की सफल और सार्थक पहल की। आकाशवाणी और तत्पश्चात टेलीविजन के लिए आलेखक पद पर रहकर कमलेश्वर ने समसामयिक और प्रासंगिक विषयों पर लेखन तथा उनकी रचनात्मक प्रस्तुति, साहित्यिक कार्यक्रम 'पत्रिका' की शुरूआत, धाराविवरणी (रनिंग कमेंट्री) तथा पहली टेलीफिल्म 'पन्द्रह अगस्त' का निर्माण किया। अछूते विषयों और सवालों से पूरे देश को झकझोर देनेवाले 'परिक्रमा' कार्यक्रम (जिसे यूनेस्को ने दुनिया के दस सर्वश्रेष्ठ कार्यक्रमों में से माना) में कमलेश्वर ने साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक समस्याओं पर खुली और गम्भीर संवाद व बहस करने की दिशा में साहसिक पहल की।

दीपक कुमार साव
वरिष्ठ प्रबंधक(राभा)
अं.का., देवघर

शमशेर बहादुर सिंह

13 जनवरी 1911-12 मई 1993

शमशेर का जन्म 13 जनवरी 1911 को देहरादून के एक प्रतिष्ठित जाट परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम तारीफ सिंह और माँ का प्रभुदेई था। उनकी आरंभिक शिक्षा उर्दू में हुई थी। वह जमाना ही उर्दू-फारसी का था; लेकिन बचपन से ही माँ के भागवत-पाठ तथा सहपाठियों की पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से वे हिन्दी से भी जुड़ते चले गये। अनजाने ही हिन्दी और उर्दू दोनों के संस्कार उन्हें मिलते चले गये। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके ननिहाल देहरादून के पी मिशन हाई स्कूल में हुई 1928 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करके 1931 में उन्होंने गोंडा (उत्तर प्रदेश) से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर 1933 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. उत्तीर्ण करके 1938 में वहीं से एम.ए. प्रीवियस भी उत्तीर्ण हुए। कुछ कारणों से फाइनल नहीं कर सके।

सन् 1929 में 18 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह धर्मवती के साथ हुआ। छ: वर्ष के साथ के बाद 1935 में यक्ष्मा से धर्मवती की मृत्यु हो गयी।

शमशेर के जीवन का बहुत बड़ा भाग बेहद अभाव से भरा रहा है। उनके भाई तेज बहादुर के शब्दों में "जिस भी इच्छा के लिए पिपासा जागती थी बस उसी का ही अभाव सामने आ जाता था।..... वे दुर्दिन तो थे ही, अभाव से ग्रसित दरिद्र जीवन के उस अंधकार में रचनाएँ, चित्र लेख और अपनी उमंगों के सपने संजोए हुए यात्री उत्तरोत्तर अग्रसर होता गया। कपड़ों का अभाव, खाने का अभाव, धन-दौलत का अभाव, भूख-प्यास साहित्य सुभट ने सभी कुछ झेला।" ऐसे समय में कुछ हितैषी भी सामने आए, जिनमें उनके मामा श्री लक्ष्मीचंद जी प्रमुख थे। सुप्रसिद्ध कवि त्रिलोचन शास्त्री तथा कुछ अन्य लोगों ने भी इन लोगों की सहायता की। जीवन के उत्तरकाल में उनकी सारी जिम्मेदारियाँ डॉ. रंजना अरगड़े ने संभाली। उनकी पूरी देखभाल, तीमारदारी उन्होंने ही की और परिवार के बाहर की होकर भी परिवार के सारे रिश्ते उन्होंने अकेले निभाए। उनकी मृत्यु 12 मई, 1993 को अहमदाबाद में डॉ. रंजना अरगड़े के निवास में हुई

शमशेर सिंह की प्राय: सभी कविताएँ एकालाप हैं- आतंरिक एकालाप। शमशेर सिंह अपनी कविताओं के माध्यम से ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की पुकार बनना चाहते हैं, जिसने बहुत कुछ भोगा है-

देखो रात / बिछलन से भरी हुई है।

(तारे जुगनू होने चले गए हैं / चाँद, चाँद सा दिल में है बस। दिल की बहकती हुई रात है ....)

उनके एकालाप में संलाप है और संलाप में ही एकालाप।

शमशेर सिंह अपने आप में चाहे जितने खोये हुए हों, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र अत्यंत भरा पूरा है, कितनी कविताएं केवल व्यक्तियों पर हैं, इतने व्यक्तियों पर कविताएँ लिखने वाले शायद वे अकेले कवि हैं।

शमशेर प्रेम के कवि हैं। यहाँ प्रेम की सघन पीर है, प्रेम की उदात्तता है। प्रेम के आदर्शवादी रूप तथा प्रेम के भौतिक रूप की टकराहट उनके काव्य लोक में भारी उथल पुथल मचा देती है। यह विवशता अथाह मौन का रूप ले लेती है जिसे कवि अकेले ही सहता है।

शमशेर मौन से अभिभूत थे- और अन्दर चल रहा हूँ मैं / उसी के महातल के मौन में, शमशेर में यह मौन घोर व्यथा, अकेलेपन के अभाव का प्रतीक भी है।

"यह विवशता / बना देती सरल जीवन को
खून की आंधी/ यह विवशता, मौन में भी है/ अथाह।"

शमशेर अपने काव्य में मन की गहराइयों से उतरे हैं,

उनकी भावुकता शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है। छटपटाहट भरे हृदय में संवेदना की ठंडी फुहार वे अपनी कविताओं के माध्यम से छोड़ते हैं जिसमें गहन से गहन पीड़ा भी घुल जाती है।

अकुलाहट सदैव अभिव्यक्ति का सहारा लेती है, ऐसे ही उनकी कविता में संवेदना के शब्द टूटे हुए मानव हृदय के लिए मरहम का कार्य करते हैं।

मेरे सूने मन में / धीरे- धीरे डूबा।

उसका मन ..

शमशेर बहादुर प्रेम को कहीं गहराई में पाना चाहते हैं और यही गहरी चेतना, एक रंग भर देती है जिससे काव्य मन उस ओर आकर्षित होता चला जाता है। शमशेर अपनी कविताओं के माध्यम से इसी गहराई में उतरते हैं-

चेहरे की शामों में
होठों की कश्तियाँ
हौले- हौले, हौले- हौले
हिलती मौन मधुर
इनमें ही भरी हुई रहती हैं
चुम्बन की मिष्टियाँ

उन्होंने अपने कुंठित प्रेम की अभिव्यक्ति सूक्ष्म प्रतीक विधान और बिम्बों के आवरण में की है। कवि अपनी अभिव्यक्ति के प्रति अत्यधिक सचेत और प्रतिबद्ध है। शब्दों की सही पहचान सही ढंग से सूक्ष्म प्रतीक बिम्ब तथा लय के साथ मन की गहराइयों में उतरना शमशेर बखूबी जानते हैं। इनकी कविता में लय की अनुभूति नियंत्रित है, जो इनके काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है। 'टूटी हुई बिखरी हुई' काव्य संग्रह की कविता इसका उदाहरण है-

मुझसे दूर अलग ना जाओ।
तुम्हें मेरे प्राणों की सौगंध।
जाओ किंतु मुझमें बसकर
सुगंध की तरह मेरे साथ
मैं हवा की तरह अदृश्य हो जाऊँ
जहाँ कहीं जाओ।

शमशेर बहादुर सिंह अत्यंत जटिल काव्य संवेदन और सूक्ष्म शिल्प संसार वाले एक श्रेष्ठ और विशिष्ट कवि हैं। उनकी भाषायी सजगता, संवेदना, बिम्ब प्रतीक संगीत, छंद सभी दृष्टियों से उनका रचना- संसार अपूर्व और आकर्षित तथापि गहरे अंतर्विरोधों से युक्त भी है। यही कारण है कि उनके निरंतर चर्चा में रहने के बाद भी उनके समूचे कृतित्व के मूल्यांकन के प्रयास बहुत कम हुए हैं।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता-संग्रह-

1. कुछ कविताएँ- 1959
2. कुछ और कविताएँ- 1961
3. चुका भी हूँ नहीं मैं- 1975
4. इतने पास अपने- 1980
5. उदिता: अभिव्यक्ति का संघर्ष- 1980
6. बात बोलेगी- 1981
7. काल तुझसे होड़ है मेरी- 1988
8. प्रतिनिधि कविताएँ - 1990
9. कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ - 1995
10. सुकून की तलाश में- 1998
11. टूटी हुई बिखरी हुई- 1990

प्रसिद्ध कविताएँ- अमन का राग (1952), टूटी हुई बिखरी हुई, एक पीली शाम (1953), समय साम्यवादी आदि।

रिपोतार्ज- प्लाट का मोर्चा

सम्मान

- साहित्य अकादमी पुरस्कार-चुका भी नहीं हूँ मैं- 1977
- मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार (मध्यप्रदेश सरकार)- 1989
- 'कबीर सम्मान' (मध्यप्रदेश सरकार)- 1989

शमशेर बहादुर मूल रूप से कवि हैं किन्तु काव्य के साथ-साथ उन्होंने गद्य लेखन भी किया है। शमशेर भावनाओं के कवि हैं, कोई उन्हें 'कवियों का कवि' कहता है तो कोई उन्हें 'शब्दों के बीच की नीरवता का कवि' 'कोई उन्हें देह का कवि मानता है तो कोई' मितकथन का कवि।

उनकी खामोश शख्सियत इतनी ऊँची थी कि वह उनकी रचनाओं में बड़े सरल रूप में देखने को मिल जाती है।

रंजना चौहान
प्रबंधक (राभा)
अं.का., हैदराबाद

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी- एक परिचय

सामान्यत: हिंदी साहित्य में योगदान के लिए हम सभी के मन में सबसे पहला भाव मुंशी प्रेमचंद का ही जाता है। फिर भी बहुत सी ऐसी महान शख्सियत हैं जिनके बगैर हिंदी साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हिंदी साहित्य की ऐसी ही एक शख्सियत की जीवन यात्रा और उनके द्वारा रचित साहित्य का परिचय इस छोटे से लेख में करना बेमानी सा लगता है फिर भी कुछ अंश आपके समक्ष रखना चाहूँगा। यहाँ बात करना चाहता हूँ हिंदी के कथाकार, व्यंगकार तथा निबंधकार श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की। मात्र दस वर्ष की आयु में संस्कृत में विद्वता हासिल करने वाले पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म राजस्थान के जयपुर में 7 जुलाई 1883 को हुआ था। उनके पूर्वज हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले के गुलेर नामक स्थान के निवासी थे। उनके पिता ज्योतिर्विद महामहोपाध्याय पंडित शिवराम शास्त्री राजसम्मान पाकर जयपुर राजस्थान आकर बस गए थे। इनके पिता को जयपुर नरेश महाराजा रामसिंह उनकी विद्वता से प्रभावित होकर गुलेर ग्राम से जयपुर ले आए थे और इसी प्रकार गुलेरी जी का सम्बन्ध राजपंडित घराने से रहा है।

वर्ष 1893 में उन्होंने जयपुर के महाराजा कॉलेज में दाखिला लिया। उन्होंने वर्ष 1899 में कोलकाता विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक तथा वर्ष 1904 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा उत्तीर्ण की थी। उन्होंने मेयो कॉलेज अजमेर में अध्यापक पद पर कार्य किया। वे अपने शिष्यों में लोकप्रिय थे। गुलेरी जी की विद्वता का ही प्रमाण और प्रभाव था कि उन्होंने 1904 से 1922 तक अनेक महत्वपूर्ण संस्थानों में अध्यापन कार्य किया। वे इतिहास दिवाकर की उपाधि से सम्मानित हुए। उनकी असाधारण योग्यता से प्रभावित होकर पंडित मदन मोहन मालवीय ने उन्हें बनारस बुलाया और काशी हिन्दू विश्विद्यालय, प्राच्य विभाग में प्राचार्य पद दिलाया। गुलेरी जी बहुभाषाविद् थे। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, बांग्ला के साथ अंग्रेजी, लैटिन तथा फ्रेंच आदि भाषाओं में भी उनकी अच्छी गति थी। प्राचीन इतिहास और पुरातत्व उनका प्रिय विषय था। उनकी गहरी रूचि भाषा विज्ञान में थी। इसके अतिरिक्त धर्म, ज्योतिष, शिक्षा और साहित्य से लेकर संगीत, चित्रकला, लोककला, विज्ञान और राजनीति आदि विषयों से भी उन्हें गहरा प्रेम था।

गुलेरी जी ने अध्ययन काल के दौरान ही 1900 में जयपुर में नगरी मंच की स्थापना में योगदान दिया। गुलेरी जी की सृजनशीलता के चार मुख्य पड़ाव हैं- समालोचक (1903-06 ई.), मर्यादा (1911-12), प्रतिभा(1918-20) और नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1920-22), इन पत्रिकाओं में गुलेरी जी का रचनाकार व्यक्तित्व बहुविध उभरकर सामने आया। उन्होंने देवी

प्रसाद पुस्तकमाला और सूर्य कुमारी पुस्तकमाला का संपादन किया। निबंधकार के रूप में गुलेरी जी बड़े प्रसिद्ध हुए। उन्होंने सौ से भी ज्यादा निबंध लिखे हैं। उन्होंने पूरे मनोयोग से समालोचक में अपने निबंध देकर इसे जीवंत बनाए रखा। पंडित जी के निबंध विषय अधिकतर- इतिहास, दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान और पुरातत्व सम्बन्धी ही हैं। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी को हिंदी साहित्य में सबसे अधिक प्रसिद्धि 1915 में **"सरस्वती"** मासिक प्रकाशित कहानी **"उसने कहा था"** के कारण मिली। यह कहानी शिल्प एवं विषय वस्तु की दृष्टि से आज भी मील का पत्थर मानी जाती है।

निबंधकार के रूप में उनकी प्रमुख रचनाएँ- **शैशुनाक की मूर्तियाँ, कछुआ धर्म, पुरानी हिंदी, देवकुल, संगीत, आँख** आदि प्रसिद्ध हैं। **"कछुआ धर्म"** की रचना के द्वारा गुलेरी जी ने मानव को कछुए के समान माना है। जिस प्रकार एक कछुआ समस्या आने पर अपने सभी अंगों को समेट कर छुपा लेता है, उसी प्रकार मनुष्य भी विपदा आने पर अपने बचाव को अपना धर्म समझते हैं। उस विपदा का सामना करने की बजाय हम उससे दूर हो जाते हैं। **कछुआ धर्म** निबंध में आर्य तथा अनार्यों के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है और बताया गया है कि आर्य जन समस्याओं का सामना न कर उसके बचाव के विषय में सोचते थे।

उनके द्वारा **एशिया की विजय दशमी, भारत की जय, आहिताग्नि, झुकी कमान, स्वागत और ईश्वर से प्रार्थना** आदि कविताएँ भी लिखी। कहानी संग्रह में उसने कहा था, सुखमय जीवन और बुद्धू का कांटा भी हिंदी साहित्य को दी। **"उसने कहा था"** कहानी तो गुलेरी जी का पर्याय ही बन चुकी है। **"उसने कहा था"** कहानी की मूल संवेदना निश्छल प्रेम, त्याग और कर्तव्यनिष्ठा है। कहानी का नायक लहनासिंह बचपन में अंकुरित प्रेम के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करता है और उसके पालन में अपने प्राणों का बलिदान देता है। दूसरी ओर वह सिपाही के कर्त्तव्य का निर्वहन भी करता है। कथानक इतना आकर्षक है कि पाठक पहली पंक्ति से ही कहानी का अंत जानने के लिए उत्सुक हो जाता है।

इसके अतिरिक्त गुलेरी जी ने सुमिरिनी के मनके नाम से तीन लघु निबंध- **बालक बच गया, घड़ी के पुर्जे और ढेले चुन लो** की भी रचना की। बालक बच गया निबंध का मूल शिक्षा ग्रहण की सही उम्र है। लेखक मानता है कि हमें व्यक्ति के मानस विकास के लिए शिक्षा को प्रस्तुत करना चाहिए, शिक्षा के लिए मनुष्य को नहीं। हमारा लक्ष्य मनुष्य और मनुष्यता को बचाए रखना है। मनुष्य बचा रहेगा तो वह समय आने पर शिक्षित किया जा सकेगा। लेखक ने अपने समय की शिक्षा प्रणाली और शिक्षकों की मानसिकता को प्रकट करने के लिए अपने जीवन के अनुभव को हमारे सामने अत्यंत व्यावहारिक रूप में रखा है। "घड़ी के पुर्जे" में लेखक ने धर्म के रहस्यों को जानने पर धर्म उपदेशकों द्वारा लगाये गए प्रतिबंधों को घड़ी के दृष्टांत द्वारा बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। "ढेले चुन लो" में लोक विश्वासों में निहित अंधविश्वासी मान्यताओं पर चोट की गई है। तीनों निबंध समाज की मूल समस्याओं पर विचार करने वाले हैं। उनका कहानी संग्रह **"गुलेरी जी की अमर कहानियां"** नाम से संकलित है।

यह हम सभी के लिए बड़े दु:ख की बात है कि 39 वर्ष की अल्पायु में वर्ष 1922 में पीलिया हो जाने के बाद तेज ज्वर के कारण उनका देहांत हो गया। कम आयु में ही पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी ने अध्ययन और स्वाध्याय के द्वारा हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत आदि तथा जर्मन फ्रेंच भाषाओं का ज्ञान हासिल किया। हिंदी साहित्य में उनके योगदान के लिए वे सदैव याद किए जाएंगे।

सिद्धार्थ नवीन
वरिष्ठ प्रबंधक (राभा)
अं.का., दिल्ली (मध्य)

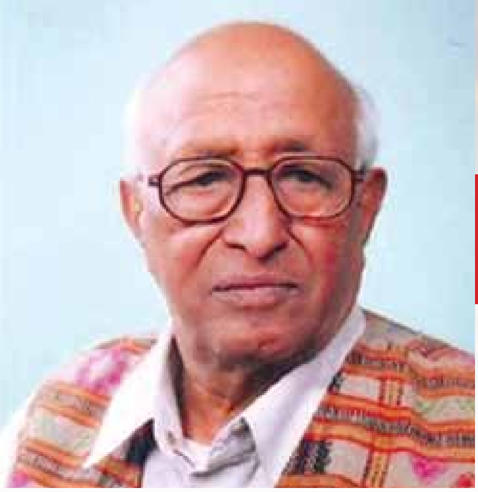

“बिज्जी” विजयदान देथा

प्रारम्भिक जीवन : विजयदान देथा का जन्म राजस्थान में जोधपुर शहर के पास बोरुंदा गाँव में, 01 सितंबर 1926 को हुआ था। उनके पिता श्री सबलदान देथा और दादा श्री जुगतिदान देथा भी राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि थे। चार वर्ष की छोटी आयु में उन्होंने अपने पिता को खो दिया था जिसके बाद वे अपने बड़े भाई के साथ जैतारण चले गए। शिक्षा पूरी होने के बाद वे पुन: अपने पैतृक गाँव लौट आए।

बिज्जी का व्यक्तित्व : बिज्जी बेहद सरल, सहज और बच्चों से निश्छल व्यक्तित्व के मालिक थे।

जड़ों से जुड़ाव : शिक्षा पूरी करते ही राजस्थानी भाषा की सेवा के निश्चय के साथ बिज्जी अपने पैतृक गाँव लौट आए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त होने और देश- विदेश की अनेक यात्राएं करने के बाद भी शहरों की चकाचौंध कभी उन्हें अपनी ओर नहीं खींच पाई उन्होंने आजीवन अपने गाँव में रहकर ही, सादा जीवन जीते हुए लेखन कार्य किया।

मातृभाषा से प्रेम : देथा जी ने बहुत कम उम्र में ही यह संकल्प कर लिया था कि वे अपनी मातृभाषा राजस्थानी में ही लिखेंगे। जिस समय उन्होंने राजस्थानी में लेखन की शुरुआत की, उस समय वह केवल लोगों की जुबान पर ही थी- ना तो उसे पढ़ने का अभ्यास था, और ना ही उसके पाठक थे। ऐसे में मातृभाषा के प्रति उनके अटूट प्रेम ने ही उन्हें इस कठिन मार्ग पर चलने का साहस दिया, इसलिए इन्हें राजस्थानी भाषा का भारतेंदु भी कहते हैं।

पुस्तकों से असीम प्यार : वृद्धावस्था के कारण जब बिज्जी लिख नहीं पाते थे तब भी उनका पढ़ना जारी रहा। अंतिम समय में कमजोरी के कारण पढ़ना भी छूट गया, तब वे घंटों तक किताबों के अक्षरों पर अंगुलियाँ फिराते रहते थे।

प्रमुख कृतियाँ व कार्य : देथा जी ने लगभग 800 लघु कथाएँ लिखी हैं, जिनका हिन्दी सहित कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं :

हिन्दी लेखन : उन्होंने कभी किसी अन्य भाषा में नहीं लिखा और उनके पुत्र कैलाश कबीर ने उनके ज्यादातर कार्य का हिन्दी में अनुवाद किया।

उषा, 1946 (कविताएं); बापू के तीन हत्यारे, 1948 (आलोचना); ज्वाला साप्ताहिक में स्तम्भ 1949- 1950; साहित्य और समाज, 1960 (निबंध); अनोखा पेड़, 1968 (बच्चों की कहानियाँ); फुलवारी, 1992 (कैलाश कबीर द्वारा अनूदित); चौधराइन की चतुराई, 1996 (लघु कथाएँ); अंतराल, 1997 (लघु कथाएँ), सपनप्रिया, 1997 (लघु कथाएँ); मेरो दर्द न जाणे कोय, 1997 (निबंध); अतिरिक्ता, 1997 (आलोचना); महामिलन, 1998 (उपन्यास); प्रिय मृणाल, 1998 (लघु कथाएँ)।

राजस्थानी लेखन : बाताँ री फुलवाड़ी (भाग 1 से 14), 1960-75 (लोक कथाएँ); प्रेरणा, 1953 (कोमल कोठारी द्वारा सह संपादित); सोरठा, 1956-1958; परंपरा (3 तीजे संपादित- लोक गीत, गोरा हट जा, जेठवा रे); राजस्थानी लोक गीत (6 भाग), 1958; टिडो राव, 1956 (राजस्थानी की पहली पॉकेट बुक); उलझन, 1984 (उपन्यास); अलेखूँ हिटलर, 1984 (लघु कथाएँ); रूंख, 1987; कब्बू रानी, 1989 (बच्चों की कहानियाँ)।

सम्पादन : साहित्य अकादमी के लिए गणेशी लाल व्यास का कार्य पूर्ण किया।

राजस्थानी हिन्दी कहावती कोश।

रूपायन : कोमल कोठारी के साथ लोक गीतों और लोक कथाओं के संकलन हेतु स्थापित संस्था।

बिज्जी के लेखन की विशेषताएँ : बिज्जी का मानना था कि कलात्मक रचनाएँ व्यक्ति के चेतन नहीं बल्कि अवचेतन मस्तिष्क की उपज हैं। बिज्जी ने तीन रचनाकारों को प्रेरणा स्त्रोत माना है। इनमें सबसे पहले थे शरतचंद्र चट्टोपाध्याय जिनसे उन्होंने संवाद लेखन की प्रेरणा ली। दूसरे थे एंटन चेखव जिनसे उन्होंने अपने आस-पास की छोटी-छोटी चीजों और घटनाओं

पर पर ध्यान देने की कला को अपनाया। अपने तीसरे प्रेरणास्त्रोत रवीन्द्र नाथ ठाकुर से उन्होंने दृष्टांतों का उपयोग सीखा।

बीज में बरगद जैसी लोक कथाएँ : देथा जी का मानना था कि जिस प्रकार एक छोटे से बीज में से विशाल बरगद का वृक्ष बनने की संभावना होती है, उतनी ही संभावना लोक कथा की होती है। लोक कथाओं को जितना खोलना चाहें या जितनी खोलने की क्षमता हो, उतनी ही खुलती जाती हैं।

लोक कथाओं का अभिप्राय महत्वपूर्ण : देथा जी ने सदियों से लोगों की जुबान पर चले आ रहे कथानक को लेकर, आधुनिक समस्याओं को, आज के पाठक के समक्ष रखने की कोशिश की है। उनका मानना था कि मौलिक कहानियाँ जो आधुनिकता को संप्रेषित नहीं कर सकती, वो उन्होंने लोक कथाओं के माध्यम से किया है।

आधुनिक भाषाई आंदोलन से दूर, बिज्जी ने, राजस्थान के गांवों-ढाणियों में भटककर, बड़े-बूढ़ों व महिलाओं से सदियों पुरानी लोक कथाओं को सुना, अपनी कल्पनाशीलता और भाषाई कौशल से इन लोक कथाओं को मौजूदा समाज और परिस्थितियों के साँचे में ढालकर आधुनिक प्रासंगिकता प्रदान की। उन्होंने लोक कथाओं को केवल लिखा नहीं बल्कि उनका पुनर्लेखन किया है।

मौखिक परंपरा को लिखित रूप देना : राजस्थानी साहित्य में बिज्जी का स्थान इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होने सदियों से मौखिक रूप में चली आ रही लोक कथाओं को लिखित रूप देने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। वे मानते थे कि लोक कथाएँ कही जाती हैं, लिखी नहीं जाती। कहने वाले के हाथ, मुद्राएँ, हाव-भाव, अंगुलियाँ और शरीर सभी बोलते हैं। इन हाव-भावों और मुद्राओं को कलम के माध्यम से रक्षित करना बड़ी बात है। उनके लिए केवल शब्दों ही नहीं, बल्कि मुद्राओं व हाव भावों को लेखन में सुनिश्चित रखना बहुत महत्वपूर्ण है।

जादुई लोक के कथाकार : बिज्जी की रचनाएँ लोक कथाओं, मिथकों, दंत कथाओं व पौराणिक कथाओं से जन्म लेती हैं इसलिए वे समुद्र सी गहरी और रहस्यमयी मालूम होती हैं। चतुर गड़रिये, मूर्ख राजा, समझदार राजकुमारी, चालाक भूत, सेठ-सेठानी, ठग-साधु, भाट गड़रिया, पशु-पक्षी, पेड़ आदि बिज्जी की कहानियों के प्रमुख किरदार रहे हैं जो कि उन्हें जादुई लोक के कथाकार का दर्जा दिलाते हैं।

सिनेमा जगत में बिज्जी की कहानियाँ : बिज्जी की कहानियों ने सिनेमा और रंगमंच को भी अपनी ओर आकर्षित किया। उनकी कहानियों पर लगभग 24 से ज्यादा फिल्में बन चुकी हैं।

सम्मान एवं पुरस्कार

1974- साहित्य अकादमी पुरस्कार (राजस्थानी के लिए)
1992- भारतीय भाषा परिषद पुरस्कार
1995- मरुधरा पुरस्कार
2002- बिहारी पुरस्कार
2006- साहित्य चूड़ामणि पुरस्कार
2007- पद्म श्री
2011- मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट द्वारा राव सिंहा
2012- राजस्थान रत्न

इनके अतिरिक्त बिज्जी को वर्ष 2011 के साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामित भी किया गया।

साहित्य जगत में बिज्जी का स्थान

राजस्थानी भाषा को संविधान द्वारा मान्यता भी प्राप्त नहीं हुई, किन्तु फिर भी राजस्थानी में लेखन का चुनाव निश्चित ही एक साहसिक निश्चय था। भले ही देथा की कहानियाँ राजस्थानी परिदृश्य की हों, लेकिन जो सवाल और मुद्दे उनके द्वारा उठाए गए, उनका दायरा बहुत बड़ा है। अन्य भाषाओं में अनूदित होकर उनकी कहानियाँ प्रांतीय सीमाओं को तोड़ती हुई राजस्थान से बाहर निकलकर, साहित्य जगत की अनमोल धरोहर बन गई। देथा की कहानी 'दुविधा' का बीसवीं सदी की कालजयी हिन्दी कहानियों में शामिल होना उनके साहित्यिक कद को दर्शाता है। साहित्य जगत में उनके स्थान का अंदाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि देथा ऐसे दूसरे भारतीय थे, जिनका नाम रवीन्द्रनाथ टैगोर के बाद साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामित हुआ था।

दुनिया से विदा

10 नवंबर, 2013 को 87 वर्ष की उम्र में, बिज्जी इस दुनिया को अलविदा कह गए लेकिन अपनी रचनाओं के माध्यम से वो हमेशा हम सभी के बीच में रहेंगे।

कविता
प्रबन्धक (राभा)
अं.का., उदयपुर

76वें स्वतंत्रता दिवस एवं बैंक के 116वें स्थापना दिवस के आयोजन की झलकियाँ

इंडियन बैंक Indian Bank

इलाहाबाद ALLAHABAD

आपका अपना बैंक, हर कदम आपके साथ

YOUR OWN BANK, ALWAYS WITH YOU

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मुद्रण दिनांक : 05/09/2022

वर्ष 1907 से इंडियन बैंक

सीमाओं से परे सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में समर्पित

कॉर्पोरेट कार्यालय: 254-260, अव्वै षण्मुगम सालै, रायपेट्टा, चेन्नै - 600 014

1800 425 000 00 www.indianbank.in हमें फॉलो करें: